रात को जब शृंगार कर के आप बनिये बापुरे के पास चलीं तो कुछ कुछ पानी बरसने लगा इस लिये श्री पीपा जी ने आप को अपने कंधे पर बिठा लिया।

* जिसके न्याय में श्री पीपा जी की सहायता बिन, राजा तथा उसके मन्त्री असमर्थ थे, वह झगड़ा यह था कि एक तालाब पर किसी पथिक की सुन्दर स्त्री के निकट कोई अन चीन्हा पुरुष आकर कहने लगा कि यह स्त्री मेरी है। झगड़ा अन्त को राजा की कचहरी में पहुंचा; साक्षी के अभाव से राजा मंत्री सब चकराये थे, श्री पीपा जी सर्वज्ञ जब ठीक बात समझ गये तौ, लोहे के छोटे बड़े कई मंजूषे (संदूक़ बक्स) और ताला मंगा के एक लोहे का बोतल सा वस्तु और उस का पेच एक बली बीर के हाथ में धरा के, राजा से बोले कि "दोनों मनुष्यों में से जो इस बोतल में आधे घंटे तक रह सकै सोही इस स्त्री का स्वामी समझा जाय"। इतना सुन एक तो चुप हो रहा पर दूसरा यह कह कर कि "मैं बोतल के भीतर जाता हूं अदृश्य हो गया। श्री पीपा जी ने बीर को पेच चढ़ाने की आज्ञा देकर, लोहे के बोतल को लोहे के सब से छोटे मंजूषे में और उस को उस से बड़े में तथा क्रमशः एक को दूसरे में धरते और ताला लगवाते हुए, अंत को कहा कि "यह मनुष्य नहीं है, दैत्य प्रेत है यदि उस में से निकलेगा तो भारी उपद्रव मचावेगा"।

कोई कहते हैं कि धरती में गाड़ दिया गया और कोई कहते हैं कि श्री पीपा जी उस की सुगति के कारण हुए, दोनों प्रकार से सुना जाता है।

जो मनुष्य चुप हो गया था वही उस स्त्री का पति था स्त्री उस को दे दी गई॥

(३६०) टीका। कवित्त (८४२-३६०=४८२)

हाट पै उतारि दई; द्वार आप बैठे रहे; चहे सूके पग, "माता! कैसे करि आई हैं?" "स्वामी जू लिवाय ल्याये;" "कहां है?" "निहारौ जाय;" आय पाय पस्यौ

डस्यौ, राखौ सुषदाई है॥ "मानौ जिनि संक, काज कीजियै निसंक, धन दियौ बिन अंक, जापै लरै मरै भाई है"। मर्यौ लाज भार, चाहै घसौं भूमि फार, दृग बहैं नीर धार, देषि, दई दीक्षा पाई है॥ २९९॥ (६२९—२९९=३३०)

वार्त्तिक तिलक ।

श्री महाराज जी आप को उस बापुरे की दुकान पर उतार के स्वयं बाहर ठहरे। ज्यों ही आप उस की दूकान में उतरीं, उस बनिये के भाग खुले, पहले उस की दृष्टि श्री चरणों ही पर पड़ी, और उस प्रभाव से उस की बुद्धि राम कृपा से निर्मल तथा पवित्र होगई चरण सूखे देख कर पूछा कि "माता ! आप आई हैं कैसे ?" उत्तर दिया कि " स्वामी जी अपने कांधे पर लाये हैं। पुनि पूछा कि "महाराज जी हैं कहां ?" बोलीं "जा देखो द्वार पर होंगे।" बनिया दौड़ा गया देख कर चरणों पर गिरा। श्री पीपा जी ने कहा कि "तुम जाव लज्जा और भय मत करो, क्योंकि तुम ने विना कागद लिखाये ही बहुतसा धन दिया है, कि जिसके लिये भाई भाई लड़ मरा करते हैं"।

बनिया लाज से मरा जाता था कि धरती में घसमरूं और रोता था। आप दोनों मूर्ती को उस पर दया आई। श्री पीपा जी ने उस को दीक्षा देकर, आवागमन के दुःख से छुड़ा दिया॥

[३६१] टीका । कवित्त । [८४२—३६१=४८१]

चलत चलत बात नृपति श्रवन परी, भरी सभा बिप्र कहैं बड़ी बिपरीति है ॥ भूप मन आई यह निपट घटाई होत, भक्ति सरसाई नहीं जानै घटी प्रीति है॥ चले पीपा बोध दैन, द्वार ही तें सुधि दई, लई सुनि कही आवौ करौं सेवा रीति है ॥ "बड़ो मूढ़ राजा मोजा गांठै बैठ्यौ मोची घर," सुनी दौरि आयो रहे ठाढ़े कौन नीति है ॥ ३०० ॥ (६२९—३०० = ३२९)

वार्त्तिक तिलक ।

यह बात चलते चलते, भरी सभा में, राजा के कानों तक पहुँच गई । ब्राह्मण चिल्लाने लगे कि "यह बड़ी बिपरीति बात है ।" अभागे नृपती के मन में भी आई कि "यह बड़ी ही घटाई है !" राजा भक्ति में सरस नहीं रहा, उस की प्रीति श्री पीपा जी के चरणारविन्द से हट घट गई । विप्रों के कहने से अभागे राजा ने ऐसे गुरु संबंध मानने में बड़ी लज्जा और अपना मान भंग जाना ।

श्री पीपा जी की राजा पर दया आई, उस को बोध देने के लिये चले । बाहरही से नौकरों के द्वारा सुधि जनाई, राजा ने नौकर को उत्तर दिया कि "जा के कह दो कि पूजा कर रहा हूं ।" पीपा जी ने कहला भेजा कि " राजा बड़ा मूढ़ है मोची के पास बैठा "मोजा बनवा रहा है और पूजा का मिस।" यह

सुन भूपति के कान खड़े हुए, रोमांच हो आये, डरा। यथार्थ को समझ कर उस की समझ ठिकाने आगई, क्योंकि उस क्षण उसका मन मोची जोड़ा के पासही था दौड़ता हुआ डरता, कांपता, हाथ जोड़े, आकर चरणों पर गिर पड़ा। श्री पीपा जी महाराज ने पूछा कि "गुरू का अनादर और भगवत पूजा के समय मन दूसरी जगह रखना, यह कौनसी नीति रीति है?"

(३६२) टीका। कवित्त (८४२–३६२=४८०)

हुती घर माँझ, बाँझ रानी एक रूपवती, मांगी "वही ल्यावौ बेगि;" चल्यौ, सोच भारी है। डगमग पांव धरै, पीपा सिंघ रूप करैं, ठाढ़ौ देखि डरै, इत आवै आप ख्वारी है॥ जाय तौ बिलाय गयौ, तिया ढिग सुत नयौ, नयो भूमि पर, "कला जानी न तिहारी है"। प्रगट्यो सरूप निज, षिजि कै प्रसंग कह्यौ "कहां वह रंग? शिष्य भयौ लाजटारी है" ॥३०१॥(६२९–३०१=३२८)

"ख़्वारी" = خواری = बुराई।

वार्तिक तिलक।

टोंड़े के राजा सूरज सेन मल की एक रानी रूपवती और बांझ थी, श्री पीपा जी ने आज्ञा की कि शीघ्र उसको मेरे पास लाओ।" इस अप्रिय आज्ञा को सुन, सोच संकोच से भरा, डगमग पांव रखता हुआ, राजा रनिवास की ओर चला। परन्तु आगे थोड़ी दूर पर एक सिंह बैठा देखा; डर के मारे न आगे

जा सकता था, और न पीछेही पांव रख सकता था। इतने ही में सिंहरूपी श्री पीपा जी अंतरधान हो गये; राजा जो उस रानी के पास पहुंचा तो उस के निकट एक नवीन बालक देखा। यह अद्भुत लीला देख, साष्टांग दंडवत कर सूर्य्यसेन ने प्रार्थना की कि "हेमहाराज! आप की महिमा कला जानी नहीं जातीहै।"

ज्ञान सूचक यह स्तुति सुनते ही बालक रूप दुरा के, श्री पीपा जी ने निज रूप से राजा को दरशन दे, डांट के कहा कि "तुझे वह दिन भूल गया कि जब शिष्य हुआ था, रानी राज इत्यादि की लाज छोड़के किस प्रेम रंग में पगा था सो रङ्ग तेरा कहां गया?"

(३६३) टीका। कवित्त (८४२—३६३=४७९)

कियौ उपदेश, नृप हृदै मैं प्रवेस कियौ, लियौ वही पन, आप आये निज धाम है। बोल्यौ, एक नाम-साधु "एक निसि देहु तिया;" "लेहु कही भागौ;" संग भागी सीता बाम है॥ प्रात भये चलैं नाहिँ, "रैन ही की आज्ञा प्रभु;" चल्यौ हारि, आगे घर घर देखो ग्राम है। आयौ वाही ठौर, "चलो माता!" पहुँचाय आवौं, आय गहे पांव, भाव भयौ, गयौ काम है॥३०२॥(६२९—३०२=३२७)

वार्तिक तिलक।

श्री पीपा जी ने उपदेश दिया, और वह उपदेश राजा के हृदय में श्री सीताराम कृपा से जा भी वैठा। सूरजसेनमल ने पूर्बवत् वही अपना नियम भगवत

पूजा तथा साधु सेवा का धारण किया; और श्री पीपा जी प्रसन्न हो के अपने स्थान में चले आये।

संत रूप बनाए एक नाम का साधु परंतु वास्तविक दुराचारी श्री पीपा जी से बोला कि "सहचरी को एक राति के लिये मुझे दीजिये" आपने आज्ञा दी कि ले जाइए उसने कहा कि मेरे साथ दौड़ती चलो। आज्ञानुसार श्री सहचरी जी उस के संग दौड़ीं (भागीं) पर भोर होते ही आप यह कह ठहर गईं कि "श्री महाराज जी ने मुझे केवल राति ही भर की आज्ञा दी थी" हार के वह दुराचारी वहां से ले जाने के लिए पालकी लेने को चला गया। आगे के गांव में घर घर उस को श्री सीता-सहचरी ही देख पड़ने लगीं। संत भगवंत की कृपा से उस की मत सुधर गई काम बुद्धि जाती रही, भाव भक्ति उपज आई त्रसित औ लज्जित हो वहीं पहुंचा जहां श्री सहचरी जी रुकी बैठी थीं। आप के चरणों पर गिर के वह बोला कि "हे माता! आप मेरा अपराध क्षमा कीजिये, चलिये, आप को श्री महाराज जी के पास पहुंचाय आऊं।' इनको श्री पीपा जी के पास पहुंचाकर फिर निःकाम भक्त हुआ।!

(३६४) टीका। कवित्त (७४२-३६४=४१८)

विषई कुटिल चारि, साधुभेष लियौ धारि, कीनी मनोहारि कही "तिया निज दीजियै"। करिकै सिँगार, सीता कोठे माँझ बैठी जाय, चाहैं मग आतुर है, आजू!

जाहु लीजियै ॥ गये जब द्वार, उठी नाहरी सुफारि- बेकौं, फारै नहीं, बानौ जानि; आय अति धीजियै। अपनौ बिचारो हियो, कियो भोग भावना को, मानि साँच, भये शिष्य प्रभु, मति धीजियै ॥३०३॥(६२९-३०३=३२६)

वार्तिक तिलक।

चार बिषयी, अभागी, कुटिल, दुराचारियों ने संतों का भेष बना के श्री पीपा जी महाराज से विनय कियो कि "अपनी स्त्री हम को दीजिये"। आज्ञानुसार श्री सहचरी जी शृंगार कर ऊपर कोठे में जा बैठीं और आपने इन सबों को अत्यंत आतुर उन का बाट जोहते देख बतादिया कि "जाओ उस कोठे पर चले जाओ लेलेओ" जब ये चारो उस कोठे के द्वार पर गये, तो देखा कि एक बाघिनि गुर्राती फुफकारती, इन को फाड़खाने के लिये चली आती है; परंतु संत भेष देख के, इन बिषयिओं को फाड़ नहीं खाती है। ये सब डर के भागे और श्री पीपा जी महाराज पर झुँझलाने रिसियाने लगे कि "तुम ने कपट कर के, हम लोगों के प्राण लेने के लिये, कोठे पर बाघिन रख छोड़ी है"। आपने उत्तर दिया कि "जैसा तुम लोगों का कुविचार था उसी भावना के अनुसार ही तो भोग भी मिला चाहै"।

इतना श्री मुख बचन सुन, उस में प्रतीति कर श्री सहचरी जी में माता का भाव ला, उसी कोठे पर ये

चारी शीघ्रता पूर्वक पुनः गये, जाते ही माता सीता सहचरी जी ने निज रूप से इन लोगों को दर्शन दे श्री महाराज जी के पास भेजा। आज्ञानुसार आके ये सब श्री महाराज जी के चरणों पर पड़ के शिष्य हो गये; और संत भगवंत के रंग में इन की मति परायण हो भीग गई॥

(३६५) टीका। कवित्त (८४२—३६५=४७७)

गूजरी कों धन दियौ; पियौ दही संतनि ने (३) ब्राह्मन को भक्त कियौ (४) देवी दी निकारि कै। (५) तेली कों जिवायौ (६) भौंसि चोरनि पै फेरि ल्यायौ (७) गाड़ी भरि आयौ (८) तन पांच ठौर जारि कै॥ (९) कागद लै कोरो कस्यौ (१०) बनियां को सोक हस्यौ (११) भस्यौ घर त्यागि (१२) डारी हत्या हूं उतारि कै। (१३) राजा को औसेर भई (१४) संत को जु विभौ दई (१५) लई चीठी, मानि, गये श्री रंग उदारि कै॥ ३०४॥ (६२९—३०४ = ३२५)

वार्तिक तिलक।

१।२ एक दिन संतों ने श्री पीपा जी से कहा कि श्री राघव जी को दही पिलाइये। श्री सीताराम कृपा से एक ग्वालिनि दही लिये हुए वहीं आ पहुँची (यामै लै दिखाई, यह बात सरसाई, 'आई जोई भक्त मन, सोई पूरी होत है सही।') ग्वालिनि ने दही दे के उस का दाम तीन रुपए बताया। आपने आज्ञा की

कि "उधार ही छोड़जा, आज जो पूजा आएगी, राम कृपा से तूही पाएगी।" ग्वालिनि यह कह के प्रसन्नता पूर्वक दधी पीते देखती बैठी रही कि "यदि आज और कुछ पूजा न आवै तो यही दही मुझ दासी की ओर से संतों को पूजा जानिये।" श्री पीपा जी को श्री सीताराम भरोसा तो थाही इस का कहना ही क्या है, ज्योंही संत लोग दही प्रसाद पी पी उठा चाहते थे कि वहीं उसी समय श्री पीपा जी का एक बड़भागी शिष्य पहुंचा जिस ने कुछ स्वर्ण-मुद्रे (अशरफियां) और मोतियों की एक माला भेंट की; वह सब का सब श्री महाराज जी ने उस बड़भागी ग्वालिनि को दे डाला।

(दो०) तुलसी बिरवा बाग को सींचत हूं कुंभिलाय।
राम भरोसे जो रहै पर्वत पै हरियाय॥

वह ग्वालिनि इतना धन लेते डरी, परंतु श्री स्वामी जी ने उस का भली भांति परितोष कर दिया। वह गुजरी अपने घर आके केवल दो चार स्वर्ण मुद्रा अपने प्रयोजन के लिये रख, शेष स्वर्ण मुद्रा और वह मोती माला पूजा चढ़ा श्री महाराज जी से शिष्य हो गई

(३) एक दिन एक देवी उपासक ब्राह्मण ने श्री पीपा जी को, और गांव भर को न्योता की; पर आप न गये; और बिशेष प्रार्थना पर यह उत्तर दिया कि "जहां श्री सीतारामसंबंध नहीं वहां मैं नहीं जाता पाता,

परंतु यदि ऐसा करो तो चलूं कि देवी को भोग धरने के पूर्वही सब अमनियों में से श्री सीताराम जी के पास पहुंचाओ"। इसी के अनुसार हुआ, और श्री महाराज जी ने संतों सहित भगवत प्रसाद पाया। रात को देवी ने ब्राह्मण से कहा कि "मैं आज भूखी ही रही, भगवत पारषदों नें मुझे मंदिर से बाहर निकाल दिया।" बिप्र देवता की आखें खुलीं, भोरही आ श्री पीपा जी से शिष्य (परिवार समेत) हुए। (४) होते ही गांव भर देवी की पूजा छोड़ श्री सीताराम भक्त हो गया ॥

(५) एक दिन एक रूपवती तेलिनि "तेल लो ! तेल लो !!" पुकारती हुई आ निकली; आप बोल उठे कि "तुझ सुंदरी को "तेल तेल" नहीं भला लगता; तेरे मुंह से तो "सीताराम सीताराम" अनुरूप होता।"

(दो०) हे सुंदरि ! तब चाहिये, शब्द रूप अनुकूल।
तेल धार अब छिन्न रटु, सरस "राम" सुख मूल ॥

तेलिनि बोली "वह तो बिधवा कहती हैं वा मुए पर कहा जाता है।" आपने कहा कि "भला, तू भी तभी कहना।"

घर आई कि उसका पति भीतर जाने लगा कि नासिका में चौकठ लगी और गिरकर मर गया; तब उस तेली की देह लेकर सब चले और तेलिन भी सत्य राम सत्य राम कहती सती होने चली श्री पीपा जी ने आके कहा कि "अब तो कहती है राम राम ?" तब घर-

णों पर पड़ के कहने लगी आपही ने मेरे पति को मार डाला है! रोती पीटती हाय राम हाय राम चिल्लाती श्री पीपा जी महाराज से कह के सिर धुनने लगी। आपने आज्ञा की "यदि तेरा पति जी उठे तो तुम दोनों श्री सीताराम श्री सीताराम जपना, श्री राम चरित सुना करना।" उस ने कहा "बहुत अच्छा।" तेलिन ने घर पहुंच, पति को जीता पा, सब प्रसंग सुना, दोनों सीताराम सीताराम कहते आके चरणों पर गिरे और शिष्य हुए।

(दो०) सिला सुतिय भइ, गिरि तरे, मृतक जिये जग जान
राम अनुग्रह शगुन शुभ, सुलभ सकल कल्यान॥

(६) एक राति चोर आकर भैंसि को चुरा ले चले; श्री पीपा जी भैंस के बच्चे को लिए हुए यह कहते साथ चले कि "पड़िया भी लेते जाइये," "मां! मां!!" चिल्लाती है इस के बिना भैंस दूध क्योंकर देगी?" बचन सुन चोर भैंसि लिये लौटे और चरणों पर गिर के भैंस और पड़िया खूंटों में बांध आप के शरणागत हो गये।

(७) एक समय भीड़ भाड़ को त्याग, श्री पीपा जी औ श्री सीता-सहचरी जी एक एकांत निर्जन ठांव में जा भजन करने लगे; उस ठौर भी एक भाग्यवान महाजन जा पहुंचा और गाड़ी भर अन्न, घी, चीनी और द्रव्य आप के भेट किये। उसी समय लुटेरे पहुंचे और उन को सहजही में श्री पीपा जी ने गाड़ी सौंप दी।

कई पल के अनंतर आपने लुटेरों से जाके यह कहा कि "मेरे पास इतने रुपये भी हैं, सो भी ले लो।" डाकुओं ने आप का नाम पूछा; पहिचाना; दंडवत कर, रुपये फेर, गाडी भी उसी स्थान पर फिर पहुंचा दी और शिष्य होकर भवसागर पार हो गये।

(८) एक वृतान्त सुनिये। किसी दिन एकही साथ आप को पांच गांव से न्यौता आया; और इतने में कुछ संत लोग भी आगये; आप उनके सत्कार में तत्पर हो, पांचौ प्रेमियों का मन रखने के लिये, पांच शरीर धरि पांचौ ठौर जा, प्रत्येक के उत्सव समाज में बिराजते रहे।

उन में से एक जगह पर प्रभात होते अपने शरीर को त्याग दिया; वहां पर आपकी शिष्य दो बाई भी उपस्थित थीं, वे यह घटना अपने सामने देख, दुखी हो, श्री सीता-सहचरी जी से निवेदन करने को टोड़े नगर को चलीं।

जब वे दूसरे ग्राम में आईं, तौ देखा कि वहां भी श्री पीपा जी के मृतक शरीर को जला रहे हैं; तीसरे ग्राम में भी उन दोनों ने आप के मृतक देह की जलती चिता देखी; इसी प्रकार पांचौ ग्राम में उन दोनों ने सुना कि रात उत्सव में श्री पीपा जी विराजते थे भोर को तन त्याग किया और आज उन के शव की चिता जल रही है। यह आश्चर्य्य देख सुन ज्योंही वे दोनों

बाइयां टोड़े नगर में पहुँचीं, तो देखा कि संत समाज में श्री सीता-सहचरी जी समेत श्री पीपा जी महाराज आनन्दयुत सीताराम जपते झूमते बिराजमान हैं।

तब दोनों आप के चरणों पर गिरीं और समाज में सब बार्ता कही बहुतों ने सुन के आश्चर्य्य माना। उन दोनों ने श्री गुरू में से मनुष्य बुद्धि उठाली और गुरू प्रभाव बिचारि अकथनीय आनन्द पाया।

(चौ०) यह न कछुक गुरु की प्रभुताई।
बिश्व रूप व्यापक सुखदाई॥

दोनों ने अपने तईं बड़ी भाग्यवती जाना।

(९) श्री पीपा जी के यहां साधु सेवा उठान के बहुत से रुपये एक बनिये के हो गये, उस ने बारंबार मांगा पर आप के यहां उन दिनों कौडी न थी; बनिये ने पंचायत में बही रख के कहा कि महाराज जी के यहां बहुत रुपये हो गये हैं देते नहीं हैं। पंचों ने जो बही देखी तो बकलापट्ट कोरा कागद पाया, महाराज जी के नाम कुछ लिखा न था। पंचों ने बहुत झुंझला के बनिये को दंड देना चाहा।

(१०) यह समाचार श्री स्वामी जी ने जान कर कहला भेजा कि "बनिये के रुपये हैं ठीक सही, परंतु वह बहुत शीघ्रही रुपिया मांगता कड़ाई करता था, उसी कष्ट के कारण भगवत इच्छा से उस की बही कोरी हो गई।" बनियां चरण पर गिर के गिड़ गिड़ाने लगा।

एक महाजन आपहुंचा और श्री सीताराम कृपा से बनिये के सब रुपये चुका कर उस बापुरे को शोक रहित कर दिया।

(११)टोड़े नगर में जो श्रीमहाराज जी की कुटी थी, वह ऋद्धि सिद्धि से भरी थी; परंतु एक दिन श्री पीपा जी और श्री सीता-सहचरी जी संमत कर के, झंझट समझ के, उस भरे घर को त्याग कर, किसी ओर चल दिये।

(१२) एक ब्राह्मण जिसको गोहत्या लगी थी और पंचों ने उसे जाति से निकाल दिया था श्री पीपा जी का नाम सुन, आप के शरण में आ, सब बार्ता सुना रोने लगा; (चौ०) पीपा कह्यौ जपौ हरि नामा। मिटै ब्रह्म हत्या दुख धामा॥ जपन सो राम नाम द्विज लाग्यौ। तन ते तुरत पाप सब भाग्यौ॥

स्वामी जी ने श्री भगवत चरणामृत औ प्रसाद पवा कर उस को बिदा कर दिया; पर कट्टर ब्राह्मणों ने जाति में नहीं लिया। तब श्री पीपा जी ने उसी ब्राह्मण के हाथों से नैवेद्य श्री हनुमान जी के मंदिर में रखवाया जब थार उतारा गया, भोग लगने के चिन्ह पाए गए। यह आश्चर्य्य देख सब ब्राह्मणों ने उस को अब हत्या रहित जान जाति में लेलिया।

(१३)बहुत काल बीतने से टोड़े के राजा सूरज सेन मल को श्री गुरु चरणारबिन्द के दर्शन की घड़ी ही

उत्कण्ठा उपजी। राजा ने घुड़ चढ़ों को जिधर तिधर भेजा कि आप को ढूंढ लावें। उन में से एक ने बीस दिन के रास्ते पर आप के दरसन पाये। राजा की लालसा प्रार्थना सुनाई। आपने उत्तर दिया "हमें उन की कामना की सुधि हो चुकी है; अभी अभी उस को दरसन देने के लिये उपस्थित थे ही।" उस घुड़चढ़े को एक पत्र दे, बिदा किया। आप और श्री सीतासहचरी जी ने उसी क्षण राजा के पास टोड़े नगर पहुंच कर उस को अपने दरशनों से कृतार्थ किया। (बहुत दिन पीछे वह घुड़ चढ़ा भी आ पहुंचा और सब वार्ता कही।

(१४) एक संत ने कुछ कारज के लिये श्री पीपा जी से धन मांगा आप ने राजा सूरज सेन वा दूसरे राजो से दिलवा दिया।

(१५) श्री रंगदास नाम एक भगवत भक्त ने, जो श्री ६ अनंतानन्द स्वामी के शिष्य आप के भतीजा चेला लगते थे, बिनय पत्र भेज श्री पीपा जी को बुलाया आप और श्री सीता-सहचरी जी दोनों गए॥ अगुआनी और अति आदर किया॥

(३६६) टीका। कवित्त (८४२ —३६६=४७६)

(१) श्री रँग के चेत धर्‌यौ, (२) तिय हिय भाव भर्‌यौ, (३) ब्राह्मण को सोक हर्‌यो, राजा पै पुजाय कै। (४) चंदवा बुझाय लियौ, (५) तेली कौ लै बैल दियौ, (६) दियौ पुनि घर मांझ भयौ सुख आय कै॥

(७) बड़ोई अकाल पर्यो, जीव दुख दूरि कर्यो, पर्यो भूमि गर्भधन पायो दै लुटाय कै। (८) अति बिस्तार लियो, कियौ है बिचार; (९) यह सुनै एक बार फेरि भूलि नहीं गाय कै ॥ ३०५ ॥ (६२९—३०५ = ३२४)

वार्तिक तिलक ।

(१) एक समय श्री रंगदास जी मानसी पूजा कर रहे थे और उन से फूलों की माला का पहनाना सहज में नहीं बनता था। श्री पीपा जी ने बता दिया कि "मुकुट उतार के यों पहिनाय दीजिये।" श्री रंगदास जी ने वैसा ही कर, श्री जानकीनाथ को माला पहिनाय, सुख पा, वह ध्यान विसर्जन कर, श्री पीपा जी को दंडवत किये। सुख पूर्वक आप दोनों श्री रंगदास जी के स्थान में रहने लगे॥

(२) एक दिन दो सुन्दरी अति नीच जाति की युवतियां उस जगह के समीप गोबर चुन रही थीं कि जहां श्री पीपा जी और श्री रंग जी बिराज रहे थे।

(चौ०) श्री पीपा बोल्यौ मुसकाई।
राम भिन्न मोहि कोउ न दिखाई॥

ऐसा सुन्दर मनोहर तनु पाके ये गोबर चुनें, बड़ी दया की बात है; देखो इन दोनों को उपदेश देकर राम कृपा से कल्यान को पहुंचा दूंगा।" इतना कह उन दोनों को अपने पास बुला लिया। वे अति नम्र और सरल हाथ जोड़े सन्मुख आखड़ी हुईं। श्री पीपा

जी ने उन से कहा कि "ऐसा सुन्दर तन पाने का लाभ यह है कि श्री जानकी जीवन शोभाधाम अखंडैकनित्य किशोर का भजन करो।" यह उपदेश उन दोनों युवतियों के हृदय में ऐसा लगा कि उसी क्षण ऊर्द्ध पुण्ड्र लगा कंठी पहन, श्री सीताराम सीताराम मनोहर स्वर से गाती हुई, घर को गईं; और श्री भगवत भक्ति उन को अत्यंत प्रिय लगने लगी।

(दो०) देह गेह की सुधि नहीं, टूट गई जग प्रीति।
नारायण गावत फिरैं, प्रेम भरे हरि गीत॥

घरवालों को महा बिमुख पा, परित्याग कर, वे दोनों उलटे पांवों फिरीं और श्री पीपा जी के पास पहुंचीं। (दो०) जरो सुसंपति सदन सुख, सुहृद मातु पितु भाइ। सन्मुख होत जो राम पद, करै न सहज़ सहाइ॥

निदान वे दोनों आप ही के शरण में रहने लगीं और श्री भगवत यश गाया करती थीं।

(३) एक ब्राह्मण ने अपनी कन्या दान में सहायता के लिये श्री पीपा जी से बिनय किया। श्री पीपा जी ने (ब्राह्मण को जगद्गुरू जान) उस व्यक्ति को वहां के राजा के पास भेजा कि "ये मेरे गुरू हैं यदि आप की श्रद्धा हो तो कन्यादान में इन की सहायता कीजिये।" राजा ने उस ब्राह्मण को बहुत रुपये दिये।

(४) कुछ दिन सत संग का सुख दे; श्री रंग दास जी से बिदा हो, टोंड़े नगर में अपने स्थान पर फिर आये। एक एकादशी की राति को राजा सूरज सेन के सामने जागरन कीर्तन हो रहा था, अकस्मात्त उसी समाज के मध्य श्री पीपा जी उठके हाथ मलने लगे। सब ने देखा कि हाथ में कारिख लग गयी। राजा ने इस आश्चर्य्य का हेतु पूछा; आप ने उत्तर दिया कि श्री द्वारिका जी में भगवत के चँदवा में आग लग गई थी उसको बुझा दिया है। राजा ने "साढ़िनी सवार" भेज के पुछवाया तो यथार्थ जाना गया कि उस एकादशी की राति को भगवत चंदवा में आग लग गई थी सो श्री पीपा जी ने बुझाई थी जो यहां उस राति को उपस्थित थे।

(५) किसी दिन आप स्नान को गये थे, वहां एक तेली का लड़का पानी पिलाने के लिये बैल लाया, उसी समय एक ब्राह्मण ने श्री पीपा जी से रो २ के कहा कि "एक बैल के बिना मेरी खेती गृहस्ती डूबी जाती है;" श्री पीपा जी ने उसी बैल की नाथ उस ब्राह्मण के हाथ में पकड़ा दी; ब्राह्मण देवता बैल ले के लम्बे हुए।

उधर वह तेली का लड़का रोने चिल्लाने लगा; आप ने उस को चुप करा के प्रतीति करायी कि तेरा बैल तेरे घर बँधा है। लड़के ने घर आके देखा तो वस्तुतः

एक बैल खूंटे पर बँधा है। लड़का बड़ा प्रसन्न हुआ और श्री महाराज जी स्वामी से शिष्य हो गया।

(६) आप भी बड़े प्रसन्न हुए और श्री युगल सर्कार की कृपा के धन्यवाद में बहुत अन्न धन निछावर किया।

(७) एक साल उस प्रदेश में भारी अकाल पड़ा; राजा सूरज सेनमल के सँभाले न सँभला! प्रजा बहुत दुख पाने लगी! राजा ने श्री पीपा जी से प्रार्थना की; श्री पीपा जी अपनी कुटी में से सब को अन्न जल कपड़े इत्यादि बांटने लगे और धरती में गड़ा धन उखाड़ उखाड़ अकाल पर्यन्त बांटते रहे, कि टोंड़ा नगर, बरन सूरज सेन मल के राज्य भर के लोग, उस कराल काल में अति ही सुखी रहे।

(८) श्री पीपा जी के चरित अनेक बड़े और विस्तृत हैं; जो कुछ संक्षेप से कहे गये उसी से साधु और भक्त जन बिचार लेंगे।

(९) जो एक बेर श्री पीपा जी के सुयश सुनता गाता है, उस को फिर कभी भूलता नहीं, उस का जी चाहता है कि "सदा आप के यश गायाही करूं"॥

(३६७) मूल, छप्पय छन्द। (८४२—३६७=४७५)

धन्य धना के भजन कों, बिनहिं बीज अंकुर भयो॥ घर आये हरिदास तिनहिं

गोधूम षवाये । तात मात डर षेत थोथ लांगूल चलाये॥ आस पास कृषिकार षेत की करत बड़ाई । भक्त भजे की रीति प्रगट परतीति जु पाई ॥ अचरज मानत जगत मे कहुं निपुज्यो, कहुंवैं बयौ॥ धन्य धना के भजन को, बिनहिं बीज अंकुर भयौ ॥६२॥ (२१३--६२==१५१)

वार्त्तिक तिलक ।

श्री ६ धनाजी ।

श्री १०८ धना जी महाराज के भजन को धन्य है, कि बीज बोए बिनाही उन का खेत उगा (जन्मा)। आप के घर संत लोग आये; उन को जो गेंहू बोया के लिये रक्खा था सो पवादिया । माता पिता के डर से छूछेही खेत में लांगूल (हल) चलवा-दिया, जिस से जान पड़े कि इस में भी बीज बोए हुए हैं। आस पास के गृहस्थ आप के खेत की (ठट्ठा से) बड़ाई किया करते थे। साधु सेवा की रीति तथा पर-तीति प्रत्यक्ष देखी । जग में इस बात के सुनने वाले आश्चर्य्य मानते हैं कि बोया गया किसी और खेत में और उपजा किसी औरही खेत में। बिना बीज बोएही जिनका खेत उपजा, ऐसे श्री १०८ धना जी का भजन धन्य धन्य है ॥

(३६८) टीका। कवित्त (८४२—३६८=४७४)

षेत की तौ बात कही प्रगट कवित्त मांझ, और एक सुनो. भई प्रथम जु रीति है। आयौ साधु विप्र-धाम, सेवा अभिराम करै, ढयौ ढिग आय, कही "मोहूं दीजै प्रीति है"॥ पाथर लैदियौ, "अति सावधान कियौ" छाती मह लाय जियौ, सेवै जैसी नेहनीत है॥ रोटी धर आगे, आंषि मूंदि लियौ, परदा कै; छियौ नहीं टूक, देखि भई बड़ी भीति है॥३०६॥(६२९-३०६-३२३)

वार्त्तिक तिलक।

श्री धना भक्त जी के बिना बीज ही खेत उपजने की बात तो श्री नाभा स्वामी जी ही ने अपने कवित्त (छप्पय) में कह दिया, अब और एक बात सुनिये, कि जिस रीति से श्री धना भक्त जी को प्रथम भक्ति उत्पन्न हुई। एक समय आप के गृह में एक श्री भगवत भक्त ब्राह्मण आये सो श्री सालग्राम जी की भली प्रकार पूजा करने लगे; देख के धना भक्त जी समीप में जाके कहने लगे कि "स्वामी जी! मुझे भी ठाकुर जी दीजिये, मुझे बड़ी प्रीति है पूजा करूंगा।" सुन के भक्त द्विज वर ने एक गोल मोल पत्थर देकर कहा कि "ठाकुर जी लो, सावधान हो प्रेम से पूजा करना"। धना भक्त जी ने ठाकुर लेकर हृदय में लगा के मानों प्राण पाया, और जैसी प्रेम की रीति नीति है वैसी सेवा पूजा आप करने

लगे। जैसे ब्राह्मण जी को भोग लगाते देखा था वैसे ही आगे रोटी धर ओट (आड़) कर, आंखें मूंद के भोग लगाया फिर देखें तो एक टूक भी रोटी प्रभु ने नहीं खाई तब आप को बड़ा भय हुआ।

(३६९) टीका। कवित (७४२—३६९=४७३)

बार बार पाँव परै, अरै, भूष प्यास तजी, धरै हिये सांचो भाव पाई प्रभु प्यारियै। छाक नित आवै नीकैं, भोग कौं लगावै, जोई छोड़ै सोई पावै, प्रीति रीति कछु न्यारियै॥ जाकौ कोऊ षाय ताकी टहल बनाय करै ल्यावत चराय गाय हरि उर धारियै। आयौ फिरि बिप्र नेह षोज हूँ न पायौ कहूँ सरसायौ बातै लै दिषायौ स्याम ज्यारियै॥ ३०८॥(६२९—३०७ = ३२२)

वार्तिक तिलक।

श्री ठाकुर जी को बारंबार प्रणाम करने लगे, हठ पूर्वक अन्न जल छोड़ कर प्रार्थना की।

हृदय में सच्चा भाव देख अति प्रियमान प्रभु ने रोटी खाई। अब तो जो खाने को छाक (कलेऊ) की रोटी आती थी सो नित्यही प्रभु को भोग लगाने लगे। जो प्रभु छोड़ देते थे, उतनाही प्रसाद आप पाते थे, क्योंकि प्रीति की रीति तो जगत से न्यारी ही है। एक दिन ठाकुर जी आप से कहने लगे कि "जिस का कोई खाता है उस की टहल भली प्रकार से करता है इस से हम तुम्हारी गऊ चराय लाया करेंगे

ऐसा कह कर उसी दिन से श्री हरि नित्यही गऊ चराय लाया करते थे। कुछ काल बीते उन भक्त ब्राह्मण ने (फिर श्री धना जी के घर में आके) देखा तो पाखान पूजा के स्नेह का खोज भी नहीं पाया। तब धना जी से पूछा कि "पूजा करते हौ कि नहीं?" तब श्री धना जी सब वृतांत कह गये कि "स्वामी जी! कई दिन तो प्रभु ने कुछ नहीं पाया इस से मैं ने भी नहीं खाया। अब तो आप की मूर्तिही में से प्रगट होकर रोटी भी खाते हैं और गैया भी चरा लाते हैं"। यह सुन ब्राह्मण जी अति चकित हुए और सप्रेम हृदय से कहने लगे कि "धना! हम को भी तो दिखादे" धना जी वहां ले गये जहां आप गऊ चराते थे, परन्तु ब्राह्मण को न दीख पड़े (!!!) निदान, धना जी की प्रार्थना से श्याम सुन्दर जी ने दरशन दे मानों ब्राह्मण को मरे से फिर जिया लिया।

(३१०) टीका कवित्त। (८४२—३१०=४७२)

द्विज लषि गायनि मै, चायन समात नाहिं, भायन कों चोट दृग लागी नीर झरी है। जाय कै भवन, सीता-रवँन प्रसन्न करै, बड़े भाग मानि प्रीति देषी जैसी करी है॥ धना को, दयाल ह्वै कै, आज्ञा प्रभु दई "ढरौ, करौ गुरु रामानंद, भक्ति मति हरी है"। भए शिष्य जाय, आप छाती सो लगाय लिये, किये गृह काम सबै; सुनि जैसी, धरी है॥३०८॥(६२९-३०८=३२१)

वार्त्तिक तिलक ।

ब्राह्मण जी के हृदय में, गायों के बीच में श्री प्रभु की छबि माधुरी देख के, आनन्द का उत्साह नहीं समाता; प्रेम भाव की चोट चित्त में लग गई, इससे आनन्द मय आँसुओं की झरी भी नेत्रों से लग गई। और यह निश्चय किया कि "अब गृह में जाके मैं भी सप्रेम भजन कर श्री सीताराम जी को प्रसन्न करूं"। मेरा कोई बड़ा भाग्य था कि इस बड़ भागी धना के संग से मुझे श्री राम जी का दर्शन हुआ। श्री द्विज भक्त जी ने जैसी धना जी की प्रीति और उस प्रीति का प्रभाव देखा वैसा ही इन ने आप भी किया।

ब्राह्मण जी के चले जाने पर, गुरु शिष्य संप्रदाय के परिपालक प्रभु ने परम दयाकर धना जी को आज्ञा दी कि "अब तुम श्री काशी जी में जाके श्री रामानन्द जी को गुरु करके श्री राम तारक मंत्र ग्रहण करो; तुह्मारी प्रीति भक्ति ने हमारा मन हरलिया।" आज्ञा पा, श्री रामानंद जी के शिष्य हो, फिर घर में आके प्रभु को प्रगट पा, चरणों में पड़े। प्रभु ने हृदय में लगा लिया इस प्रकार धना जी गृह में रह के गृह के कारज भी किया करते और भगवत भजन भी।

हम ने जैसी संतो से सुनी थी वैसी इन की कथा लिख के रख दी है॥

(३३१) मूल, छप्पय छन्द। (५४२—३३१=४११)

विदित बात जग जानियै, हरि भये सहायक "सेन" के॥ प्रभुदास के काज रूप नापित कौ कीनौ। छिप्र छुड़हरी गही पानि दर्पन तहँ लीनौ॥ तादृस ह्वै तिहिँ काल भूप के तेल लगायौ। उलटि राव भयौ शिष्य प्रगट परचौ जब पायौ॥ स्याम रहत सनमुख सदा, ज्यों वच्छा हित धेन के। बिदित बात जग जानिये, हरि भये सहायक सेन के॥ ६३॥ (२१३-६३ = १५०)

वार्तिक तिलक।

श्री ६ सेन जी।

यह वार्ता बिदित है, सम्पूर्ण जगत जानता है, कि श्री हरि श्री "सेन" भक्त जी के सहायक हुए; किस प्रकार हुए सो सुनिये, अपने सच्चे दास का कारज करने के लिये प्रभु ने नापित (नाऊ) का रूप धारण किया और बहुत शीघ्रही छुरारखनेवाली पेटी कंधे में टांग, हाथ में दर्पण लेकर, सेन भक्त का रूप धर, बाँधौ गढ़ बघेला के राजा बीरसिंह के पास तेल लगाने के समय जाके तेल लगाया, तथा दर्पन आदिक दिखा के सब सेवा की। राजा ने जब यह प्रभु कृत परची प्रगट जाना तब फिर वह श्री सेन भक्त जी का शिष्य हो गया।

देखिये जैसे गऊ अपने बछड़े की प्रीति हित कार में सन्मुख तत्पर रहती है वैसा ही भक्त वत्सल श्याम सुन्दर श्री राम जी अपने भक्तों के हित कार में सन्मुख तत्पर रहते हैं। प्रभु ने इस प्रकार श्री सेन भक्त की सहायता की ॥

(३७२) टीका कवित्त (७४२ — ३७२=४७०)

"बांधौ गढ़* वास, हरि साधु सेवा आस लागी, पगी मति अति, प्रभु परचौ दिखायौ है। करि नित्त नेम, चल्यौ भूप कौं लगाऊं तेल, भयौ मगमेल संत, फिरि घर आयौ है ॥ टहल बनाय करी, नृप की न संकधरी, धरी उर श्याम, जाय भूपति रिझायौ है। पाछे सेन गयौ, पंथ पूँछे, हियें रंग छयौ, भयौ अचरज राजा बचन सुनायौ है ॥ ३०९ ॥ (६२९—३०९=३२०)

वार्तिक तिलक ॥

"श्री सेन भक्त जी" का निवास "बघेल खण्ड बांधव गढ़" में था। आप की आसा श्री सीताराम जी तथा संतों की सेवा पूजा में लगी रहती थी, और उसी में अतिशय प्रीति रीति से मति पग गई थी।

तब श्री प्रभु ने परचौ दिखाया कि एक दिन श्री सेन भक्त जी श्री राम पूजा मंत्र जप आदिक नित्य नेम कर गृह से राजा बीरसिंह के तेल लगाने के लिये चले; मार्ग में बहुत से संत मिल गये, आप सब को दंडवत प्रणाम कर प्रार्थना पूर्वक लौट के अपने घर में लि-

वाय लाये। राजा की भय शंका छोड़, सन्तों की भले प्रकार सेवा पूजा कर रसोई बनवा के सन्तों को प्रसाद पवाने लगे। सेन भक्त की प्रीति देख प्रभु श्याम सुन्दर ने, जैसा छप्पै में कहि आये वैसाही जाके, राजा की सेवा कर प्रसन्न किया। संतों की सेवा करने के पीछे सेन भक्त राजा के समीप चले, मार्ग में राजा के समीप से आनेवाले लोगों से आपने पूछा कि "राजा महाराज स्नान कर चुके, तो तेल किस ने लगाया था?" लोगों ने कहा "आप ही ने तो लगाया है"। सुन के भक्त जी के मन में बड़ा आश्चर्य हुआ और जाना कि यह कुछ प्रभु की कृपा कौतुक है, इस से आप के हृदय में अतिशय प्रेम रँग का उमंग छा गया। जब सेन भक्त राजा के पास गये तब राजा पूछने लगा।

(३७३) टीका कवित्त (८४२-३७३=४६९)

"फेरि कैसें आये?" सुनि अति हीं लजाये; कही "सदन पधारे संत, भई यों अवार है। आवन न पायौ" वाही सेवा अरुझायौं," राजा दौरि सिर नायौ, देखी महिमा अपार है॥ भीजि गयौ हियौ, दास भाव दृढ़ लियौ, पियौ भक्तिरस, शिष्य ह्वै के जान्यौ सोई सार है। अबलौ हूं प्रीति, सुत नाती वही रीति चलैं, होय जौ प्रतीति प्रभु पावै निरधार है॥ ३१०॥ (६२९-३१०=३१९)

वार्तिक तिलक।

राजा बोला कि "सेन! तुम अब फिर किस लिये

आये ?" आप अति लज्जित हो हाथ जोड़ प्रार्थना करने लगे कि "हे महाराज ! मेरे गृह में संतलोग कृपा कर आगये, सो उनकी सेवा सत्कार करने लगा आने न पाया, इस से विलम्ब हो गया"। ऐसा सुन राजा को, प्रभु के कर कमल स्पर्श का अलौकिक सुख तो हुआ ही था, इससे जान गया कि "सेन" का रूप धारण कर, भगवान् ही आये थे।

राजा बीर सिंह दौड़ कर श्री सेन भक्तजीके चरणों पर गिर पड़ा, यह विचार करने लगा कि 'ओह ! इन भक्तजी की अपार महिमा है; निदान राजा का हृदय श्री राम प्रेम रस में डूब गया और श्री सीताराम जी का तथा श्री सेन भक्त जी का दास्य भाव मन में दृढ़ धारण कर, आप का शिष्य हो कर श्री भक्ति रस को पान कर उसी को सारांश जान, जगत को असार माना।

टीकाकार कहते हैं कि "अब तक भी सेन भक्त जी के पुत्र पौत्रादिक उसी संत भगवंत की सेवा भक्ति रीति में चलते हैं। यह बात निश्चय है कि जो हृदय में सच्ची प्रीति प्रतीति हो तो प्रभु अवश्य मिलते हैं॥

(३१४) मूल । छप्पै छन्द । (८४२--३१४=४६८)

भक्ति दान, भै हरन भुज, "सुधानंद पारस परस ॥ "सुख सागर" की छाप

राग गौरी रुचि न्यारी। पद रचना गुरु मंत्र मनों आगम अनुहारी॥ निसिदिन प्रेम प्रवाह, द्रवत भूधर ज्यों निर्झर। हरि गुन कथा अगाध भाल राजत लीलाभर। संत कंज पोषन विमल, अति पियूष सरसी सरस। भक्ति दान भै हरन भुज "सुषानंद" पारस परस॥ ६४॥ (२१३—६४ = १४९)

वार्त्तिक तिलक।

श्री ६ सुखानन्द जी।

जनों को भक्ति दान देने में तथा संसार के भय हरने में श्री सुखानन्द जी श्री राम रघुबीर जी के भुजा के सरीखे रहे; और लोहा सरीखे खोटे जीवों को अपने संग रूपी स्पर्श से सुवर्ण सरीखा उत्तम संत कर देने के लिये मानों पारस मणि ही थे।

(चौ०) शठ सुधरहिं सतसंगति पाई।
पारस परसि कुधातु सुहाई॥

(दो०) पारस में अरु संत में बड़ो अंतरो जान।
वह लोहा सोना करै, ये करें आपु समान॥

आप अपने पदों की पूर्ती में "सुख सागर" की छाप दिया करते थे; जैसे; श्री मीराबाई "गिरिधर नागर" की और आपने गौरी राग में बहुत से पद बनाये हैं। उन में लोक से न्यारी ही प्रियतारुचि प्राप्त होती है।

श्रौर श्रापने ऐसे प्रभाव युक्त निगमानुकूल पदों की रचना की है कि मानों गुरु मंत्र ही है श्रथवा दिव्य संहिता तंत्र हैं; दिन रात्रि श्री राम प्रेमाश्रु का प्रवाह नेत्रों से ऐसा चलता था कि जैसे श्री चित्रकूट पर्वत के झरना झरते हैं; श्री सीताराम गुन गन बहुत गाया करते थे। कथा लीलारूपी विमल श्रमृत से श्रतिशय भरे हुए, संत जन कमलों के पोषक विकासक, मानों श्रति सरस तड़ाग (तालाब) ही थे। श्रौर जब भगवत कथा कहने लगते थे तब श्री सुखानंद जी का ललाट (लिलार) श्रति प्रकाशमान राजता था॥

---

(३७५) मूल, छप्पय छन्द। (८४२—३७५=४६७)

महिमा महा प्रसाद की "सुर सुरा-'नन्द" सांची करी॥ एक समै अध्वा चलत बरा वाक छल पाये। देषा देषी शिष्य तिनहुं पाछैं ते खाये॥ तिन पर स्वामी खिजे बयन करि विन विस्वासी। तिन तैसे परतच्छ भूमि पर कीनी रासी॥ "सुरसुरी-सुवर" पुनि उद गले, पुहुप रेनु, तुलसी हरी। महिमा महा प्रसाद की सुरसुरानंद साँची करी॥६५॥
(२१३—६५ = १४८)

वार्त्तिक तिलक।

श्री ६ सुरसुरानन्द जी।

श्री १०८ सुरसुरानंद जी ने भगवत मुक्तावेष में महा प्रसाद की महिमा जैसी भक्ति ग्रंथों में लिखी है वैसी सत्य करके प्रत्यक्ष दिखा दिया—

एक समय शिष्यों को साथ लिये मार्ग में चले जाते थे, वहां किसी वैष्णवद्रोही नीच ने उरिद का बरा बहुतसा बनाया और उस में मांस भी मिला दिया था फिर उसने तुलसी छोड़ वाक्यछल कर आप से कहा कि "यह भगवत प्रसाद है लीजिये, पाइये"। आप थोड़ा सा हस्त में ले प्रसाद ध्यान भाव पूर्वक पाकर आगे चल दिये*। किंचित ही अंतर में शिष्य लोग थे, उन्हों ने देखा कि स्वामी जी ने यह प्रसाद पाया है। फिर उस दुष्ट ने उन लोगों को भी "प्रसाद" कह वही बरा दिया सो सब के सब स्वाद बुद्धि से बहुत बहुत खाकर स्वामी जी के समीप आये; तब आप ने क्रोध करके कहा कि "क्योंरे मूर्खौ! तुम लोगों ने भाव बिस्वास बिना ही बरा क्यों खा लिया? बमन करौ" उन्हों ने जो बमन किया तो वैसही बरा भूमि में रासि लग गया; सबके सब ने जल लेकर कुल्लियां कीं; तदनंतर श्रीसुरसुरीजी-के-पति श्री सुरसुरानन्द जी अपने मुहँ में उँगलियां दे बमन कर उस प्रसाद को देखें तो वह बरा साक्षात

२५ *"वैष्णवे भगवद्भक्तौ प्रसादे हरिनाम्नि च। अल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते॥"

हरित तुलसी दल, पुष्प तथा रेणु हो गया कि जिस की सुगंधि चारों दिशि छा गई। इस प्रकार से आप ने महाप्रसाद की महिमा दिखाई। श्रीमहाप्रसाद की जय॥

(३७६) मूल छप्पय (८४२ - ३७६=४६६)

महासती सत ऊपमा, त्यों सत्त "सुरसुरी" को रह्यो॥ अति उदार दंपती त्यागि गृह, बन को गवने। अचिरज भयो तहँ एक, संत सुन जिन हो बिमने॥ बैठे हुते एकांत आय असुरनि दुख दीयो। सुमिरे सारँगपानि रूप नरहरि को कीयो॥ सुर सुरानंद-की-घरनि को, सत राख्यो नरसिंघ जह्यो। महासती सत ऊपमा, त्यों सत्त "सुरसुरी" को रह्यो॥ ॥६६॥ (२१३—६६ = १४७)

"जह्यो"=प्राणत्याग कराया। पाठांतर "जयो"=जीतलिया

वार्तिक तिलक।

श्री ६ सुरसुरीजी देवी।

श्री अरुन्धती, अनुसूया, लोपामुद्रा, सावित्री, आदिक जो महासती हैं, तिन के सत्त के समान श्री राम कृपा से "श्री सुरसुरी जो" का सत्य पातिव्रत्य अखंड

रह गया। एक समय अति उदार दंपती श्री "सुरसुरानन्द" जी और श्री "सुरसुरी" जी अपने गृह की सब संपति दान कर, श्री सीताराम जी के भजन करने के लिये, गृह त्याग, उत्तम बन में आए। हे संतो! वहां एक आश्चर्य्य हुआ सो सुन प्रभु का बिश्वास मान आप आनंदित होवैं। बिमन मत होवैं॥

एक समय दोनों मूर्ती एकांत में बैठे थे; वहां बहुत से असुर (मुसल्मान) आकर, श्री सुरसुरी जी का अति सुन्दर रूप देख, इन को लेने को दौड़े। दंपती ने श्री सार्ङ्गपाणि रघुबीर जी का स्मरण किया; प्रभु ने उसी क्षण नृसिंह रूप धारण कर, सब दुष्टों के प्राण ले के, श्री सुरसुरानन्द जी की पत्नी का पातिब्रत्य रख लिया। तदनंतर श्री राज माधुरी रूप के दर्शन से भक्त दम्पती को कृतार्थ कर अन्तर्द्धान हुए॥

"मैं रह गइउँ आली! मोहाय करके, प्रभु देखे न पाइउँ नयन भर के"॥

(३११) मूल छप्पय (७४२—३११=४६५)

निपट "नरहरियानंद" को, करदाता दुर्गा भई॥ घर भर लकरी नाहिँ शक्ति को सदन उदारैँ। शक्ति भक्त सों बोलि दिनहिं प्रति बरही डारैँ॥ लगी परोसी हौंस भवानी भैंसो मारै। बदले की बेगारि मूंड वाके सिर डारै॥ "भरत"

प्रसंग ज्यों कालिका, "लडू" देषि तन मैं तई। निपट "नरहरियानन्द" कौं, करदाता दुर्गा भई ॥६७॥(२१३-६७ = १४६)

[१] श्री नरहरियानन्द स्वामी; [२] श्री लडू स्वामी॥

वार्तिक तिलक।

श्री ६ नरहरियानन्द जी।

जैसे राजा को प्रजा कर देते हैं, ऐसही श्री नरहरयानन्द जी को कर भली प्रकार श्री देनेवाली दुर्गादेवी जी हुई। एक समय मेघों ने जल की बड़ी झड़ी लगाई; और, श्री नरहरियानन्द जी की कुटी में श्री भगवंत संत के भोग के लिये अन्नादिक सामग्री तौ सब थी परंतु लकड़ी न थी।

आप बिचार करने लगे कि "अब किस प्रकार रसोई हो और श्री सीताराम जी को भोग लगा के संतों को प्रसाद पवाऊं"। तब चित्त में यह फुरा कि "देवी के मन्दिर में बहुत से काष्ठ लगे हैं सो ले आऊं"। ऐसा बिचार कुल्हाड़ी लेकर शक्तिभगवती का गृह आप उजाड़ने लगे। श्री देवी जी प्रत्यक्ष हो कर बोलीं कि "हे श्रीरामभक्त जी! आप हमारा घर मत गिराइये; मैं आप को नित्य लकड़ी दिया करूंगी" आप ने कहा "बहुत अच्छा"

श्रीर चले आये। तब से श्री देवी जी रात्रि में नित्य एक बरही (बड़े बोझ भर) लकड़ी आप की कुटी में डाल जाती थीं।

इस बार्ता को एक पड़ोस का रहनेवाला मनुष्य जान कर वह भी आप के समान लकड़ी लेने की इच्छा कर, श्री देवी जी का गृह उजाड़ने लगा; श्री भवानी जी उस के शरीर में प्रवेश कर व्याप्त हो, भूमि में पछाड़, प्राण लिया चाहती थीं; बहुत विलंब देख उस के घर के लोग जा देखें तो वह मरणप्राय हो रहा है; तब सबों ने श्री देवी जी की बड़ी प्रार्थना की। श्री देवी जी उसी के भीतर से बोलीं कि "यह यदि नरहरियानन्द जी को वैसी ही लकड़ियों का बोझ नित्य दिया करै, तब तो छोड़ूगी नहीं तो मार डालूंगी"। उस दिन से देवी की विगार उसी के सीस पड़ी, नित्य श्री नरहरियानन्द जी को लकड़ी दिया करता था॥

श्री लड्डू भक्त जी।

ऐसही श्री भागवत में "श्री जड़ भरत जी" और श्री भद्रकाली का प्रसंग लिखा है; और उसी प्रकार श्री "लड्डू" भक्त जी का।

श्री जड़ भरत जी की कथा २४४ पृष्ठ से २४६ पृष्ठ में और सिन्धु सौवीर देश के राजा रहूगण के साथ पृष्ठ २३० में, लिखी जा चुकी है कि "श्री जड़ भरत

जी" महाराज जंगल में बैठे भगवत स्मरण कर रहे थे। भिल्लों के एक राजा ने भद्रकाली नाम अपनी इष्ट देवता को बलि देने के लिये एक लड़के को मोल लिया था, उस लड़के को किसी से ज्ञात हो गया कि मुझे बलि देने को मोल लिया है इसी से वह लड़का रात्रि के समय भाग गया। राजा ने उस के ढूंढने के लिये लोग भेजे । उस लड़के को तो राजा के जन ने नहीं पाया, परन्तु "श्री जड़ भरत जी" ही को ले आये । आप तो परम हंस थे ही शांत भाव से दुष्टों के संग चले आए ।

जब उनको बिधि-पूर्वक बलि देने के लिये राजा उपस्थित हुआ तो श्री देवी जी ने बिचारा कि "यद्यपि रामभक्त तो कुछ बोलैंगे नहीं, परन्तु 'जो अपराध भक्त कर करई । राम रोष पावक सो जरई' ॥ उसी अपने विग्रह में से श्री कालिका जी प्रगट हो दुष्ट के हाथ से खड्ग छीन उसी से सब दुष्टों को मार अपने गणों के हाथ में उन का सिर दे दे, स्वयं देवी श्री जड़ भरत जी के आगे नाचने और उन को प्रसन्न करने लगीं । श्री भक्त और भगवत को श्री देवी जी ने इस भांति प्रसन्न किया—

श्री जड़ भरत जी तो आनंद के मूर्ति थे ही श्री सीताराम सीताराम कहते हुए पुनः जंगल में चले गए।

"श्री लड्डू स्वामी जी" एक समय बंगाले के मध्य एक कुदेश में गए; वहां लोग आप को दुर्गा जी को बलि देने को ले गए। काली जी क्रोधाग्नि से तप्त हो खड्ग ले दुष्टों को मार श्री लड्डू स्वामी की रामभक्ति की प्रशंसा करने लगीं। यह देख सुन, सब ग्रामवासी भगवत भक्त हो गए॥

(३७८) मूल छप्पय। (८४२-३७८=४६४)

"कबीर" कृपा तें परम तत्व, "पद्मनाभ" परचौ लह्यौ॥ नाम महा निधि मंत्र, नामही सेवा पूजा। जप तप तीरथ नाम, नाम बिन और न दूजा॥ नाम प्रीति, नाम बैर, नाम कहि नामी बोलैं। नाम "अजामिल" साखि, नाम बंधन तें खोलै॥ नाम अधिक रघुनाथ तें, "राम" निकट "हनुमंत" कह्यौ। "कबीर" कृपा तें परम तत्व, "पद्मनाभ" परचौ लह्यौ॥६८॥(२१३—६८=१४५)

वार्तिक तिलक।

श्री पद्मनाभ जी।

(अब तक स्वामी अनन्तश्री रामानन्द जी के चेलों

का यश वर्णन था।) अपने गुरु देव श्री कबीर जी की कृपा से श्री पद्मनाभ जी ने परम तत्व, परब्रह्म स्वरूप भूत श्री राम नाम से, परचो पाया; क्योंकि आप बड़े ही श्री रामनामानन्य एक तत्वाभ्यासी हुए; आप ने श्री राम नाम महानिधि ही को परम मंत्र मान जप किया; और श्री राम नाम ही की सेवा पूजा की ॥

(दो०) राम नाम अनादि ब्रह्म, सुमिरे शंकर सेस।
राम चरण सांचा गुरू, यों देवै उपदेस ॥

और तंत्र शास्त्र की बिधि पूर्वक जप तथा पंचाग्नि आदिक तप, पृथ्वी भर के तीर्थ, सब आप श्री राम नाम ही को जान कर प्रेम करते थे।

श्री नाम को छोड़, और कोई दूसरा साधन मनही में न लाते थे।

"तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं, तेन सर्वं कृतं कर्म जालं।
येनश्रीरामनामामृतं पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्यकालं"

(दो०) राम नाम सुमिरन भजन, नामहि पूजा प्रेम।
तप, तीरथ, रस रंग मखि, नाम योग, सुख, छेम ॥

नाम ही से, तथा श्री रामनामानुरागी ही से, प्रीति करते थे। और जो नाम से बिमुख जीव थे उन्हीं से बैर बिरोध करते थे अथवा, जब किसी से बैर बिरोध हो जाता था, तब नाम ही स्मरण करते थे। नामी जो पर ब्रह्म परमात्मा श्री रामचन्द्र जी हैं उन को भी नाम ही कह के बोलते थे ॥

कवित्त–मूल रेफ ब्रह्म, ताते कारन सुक्ष्म थूल, तीन हू अकार सत चित मुद ग्राम हैं। रेफ राम मिलित सिया सनेह नाद कृपा दीरघ अकार स्वर बिद्या अभिराम है॥ व्यंजन मकार थूल, माया विन्दु, जीवानन्द, संजुत अकार जीव मणि* रसराम है। सब नाम रामही के मान कै करै प्रणाम, जपै "राम" नाम जानि जीव ब्रह्म धाम है॥

श्री भगवत नाम में अजामिल साक्षी है; अर्थात् अपने पुत्र के बहाने से "नारायण" नाम लिया इसी से नाम ने भव-बंधन तथा यम पास बंधन से छुड़ा दिया। पृष्ठ ९३ श्री धर्म्मराज अजामेल प्रसंग।

(दो०) अजामेल शिशु मोह मिसु, कहि नारायण नाम।
भव बंधन रसरंगमणि, त्यागि गयौ हरि धाम॥

साक्षात श्री रघुनाथ जी के प्रति हनुमान जी ने कहा है कि हे "प्रभु! आप का नाम आप से भी बड़ा है, क्योंकि आप तो केवल अयोध्यावासी प्रजाही मात्र को अपने परम धाम को लेगये, और आप के नाम तीनों लोक के जीवों को परम धाम ले जाते हैं।"

(श्लोक) राम त्वत्तोऽधिकं नाम इति मे निश्चिता मतिः। त्वयैका तारिताऽयोध्या नाम्ना तु भुवनत्रयम्॥१॥

इस प्रकार श्री कबीर जी की कृपा ते पद्मनाभ जी ने परम तत्व का परचो पाया॥

* श्री रामरसरङ्गमणि जी, जो अब श्री जानकीघाट हजूरी जी के स्थान में बिराजते हैं, जहां के महन्त अब श्री महाबीर दास जी हैं॥

(३७९) टीका कवित्त। (८४२-३७९=४६३)

काशी वासी साहु भयौ कोढ़ी, सो निवाह कैसे, प-
रिगये कृमि चल्यौ बूड़िबे कों, भीर है। निकसे "पदम"
आय, पूछी ढिग जाय, कही गही देह खोली गुन न्हाय
गंगा नीर है॥ "राम नाम कहै बेर तीन मैं, नवीन
होत;" भयौई नवीन कियौ भक्त मति धीर है। गयौ
गुरु पास, "तुम महिमा न जानी; अहो! नाम भास
काम करै" कही यों कबीर है॥३११॥ (६२९-३११=३१८)

वार्तिक तिलक।

एक काशी बासी सेठ कोढ़ी हो गया और उस की देह में कीड़े भी पड़ गये; उसने किसी प्रकार से जीने में अपना निर्बाह न देखा, तब उसने कहा कि "हम श्री गंगा जी में डूब जायंगे;" उस के घर के और बहुत से लोग लेकर गंगा तट गये। उसी समय उसके भाग्य बस, श्री पद्मनाभ जी वहां आपड़े; और पूछा कि "क्या है?" लोगों ने सब कह दिया कि "यह कोढ़ी डूब मरता है"॥ आपने आज्ञा दी कि इस के बंधन, और पाखान आदिक, छोड़ दो; यह गंगा स्नान कर यह संकल्प मन में करे, कि "मैं जन्म भर श्री रामनाम जपूंगा; तीन बार श्री राम नाम कहै, अभी अभी इस की नवीन काया हो जावैगी।" वैसाही किया; श्री रामानुरागी की कृपा से उस का नवीन शरीर हो गया, कुष्ट छूट गया। तदनंतर उस ने जन्म भर श्री राम भक्ति पूर्वक नाम स्मरण किया।

श्री पद्मनाभ जी अपने गुरु श्री कबीर जी के पास आये, श्री कबीर जी यह वार्ता सुन कहने लगे कि तुम ने श्री राम नाम की महिमा नहीं जानी, कुष्ठ तो श्री राम नाम का आभास* मात्र नाश कर देता।" तब पद्मनाभ जी ने अति आश्चर्य्य को प्राप्त हो श्री नाम का प्रभाव जाना ॥

* आभास अर्थात् जैसे जमन ने "हराम" कहा ।

(क०) कोऊ एक जमन जरठ मग जात कहूं, सूकर के सावक ने मार्‌यौ ताहि धाय कै। जोर सो पुकार्‌यौ "मोहिँ मार्‌यौ है 'हराम' जाति, ऐसे कहि बेगि प्रान गए अकुलाय कै ॥ गो पद समान भव सागर सों पार गयौ; नाम के प्रताप ऐसो पद कह्यौ गाय कै। प्रेम सो कहैगो कोऊ नाम, कृपा राम, कौन अचरज राम धाम देतु है जो चाय कै ॥

[चैत] सखि! नैहर में, काहे फिरति बौरानी, ए रामा, सखी नैहर में। खेलत खात रात दिन बीते रहियै सदा न जवानी ए रामा ॥ इधर से आवै उधर चलि जावै करि रहु कोटि जतनवा ए रामा। धन सम्पत कहिँ ठहरै न आली, करि लेहु राम भजनवा ए रामा ॥

---

(३८०) मूल छप्पय । (८४२—३८०=४६२)

"तत्वा" "जीवा" दक्षिण देस वंसो-
द्भुर राजत विदित ॥ भक्ति सुधा जल

समुद्र भये बेलावलि गाढ़ी। पूरबजा* ज्यों रीति प्रीति उत्तरोत्तर बाढ़ी॥ रघुकुलसदृश सुभाव, सिष्ट गुण, सदा धर्म रत। सूर, धीर, उदार, दया पर, दक्ष, अनन्य व्रत॥ अदसषंड "पदमा पद्धति" प्रफुलित कर सविता उदित। तत्वा जीवा दक्षिन देस बंसोद्धर राजत विदित॥ ॥९९॥ (२१३—९९ = १४४)

* पूर्बजा दो पहर के पीछे की छाया अर्थात् पश्चिम सूर्य्य आने से पूर्ब में प्रगट होने वाली बढ़ती हुई छाया।

वार्त्तिक तिलक।

(१) श्री तत्वा जी (२) श्री जीवा जी।

श्री राम भक्त "तत्वा जी" तथा "जीवा जी" दक्षिण देश विप्र कुल में, अपने वंश भर के उद्धार करने वाले, जगत विदित दोनों भ्राता विराजमान हुए।

दोनों भाई भक्ति सुधा जल समुद्र के दोनों तट की दृढ़ वेलावली (मर्यादा) हुए; और संत भगवंत में दोनों भाइयों की प्रीति रीति उत्तरोत्तर कैसी बढ़ी कि जैसे दो पहर के पीछे की छाया उत्तरोत्तर बढ़ती है। आप दोनों, रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजी के खरे खरे पूरे दास थे, इस से रघुबंशियों के ऐसा शुद्ध सुभाव, श्रे-

ष्ठ गुण, सदा धर्म में प्रीति, लोक परलोक के शत्रुओं के लिये सूर, तथा धीर, उदार, दयापरायण, अति प्रवीण, और अनन्य व्रत युक्त थे ।

"श्री पद्मा पद्धति" जो श्री सम्प्रदाय, सोई कमल के बन सरीखा है, सो उस को प्रफुल्लित करने वाले दोनों भाई मानों दो सूर्य्य उदित हुए । इस प्रकार के निज बंशोद्धारकारक श्री तत्वा जीवा भक्त हुए ॥

(श्लोक) प्रारंभगुर्वी क्षयिणी क्रमेण, लघ्वी पुरा-वृद्धिमती च पश्चात्; दिनस्य पूर्वार्द्ध परार्द्धभिन्ना छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ॥ १ ॥

खलों और सज्जनों की मित्रता ऐसी घटती बढ़ती जाती है जैसी कि दिन के पूर्वार्द्ध तथा परार्द्ध की छाया घटती बढ़ती है ।

(३८१) टीका । कवित्त (८४२—३८१=४६१)

तत्वा, जीवा, भाई उभै, विप्र साधु सेवा पन, मनं धरी बात, तातें शिष्य नहीं भये हैं ॥ गाड़यौ एक ठूठ-द्वार, होय अहो हरी डार, संत चरणामृत को ले कै डारि दये हैं ॥ जब ही हरित देखैं, ताको गुरु करि लेषैं, आये श्री कबीर, पूजि आस, पाव लये हैं ॥ नीठ नीठ मात दियौ, दियौ परिचाय, धाम, काम कोऊ होय जो पै आवो कहि गये हैं ॥३१२॥(६२९—३१२=३१७)

वार्तिक तिलक ।

श्री "तत्वा" जी तथा "जीवा" जी दोनों भाई ब्राह्मण थे। संत वैष्णवों की सेवा का व्रत भले प्रकार धारण किये

थे। परंतु मन में एक वार्ता निश्चय किये हुए थे; इस से किसी के शिष्य नहीं हुए थे। वह बार्ता यह है कि आपने अपने द्वार पर एक सूखे काष्ठ का ठूंठा गाड दिया था। जो नित्य नवीन संत आते थे उन के चरण धोकर चरणामृत उस में डालते थे मन में यह था कि "जिसके पदतीर्थ से इस ठूंठ में हरे २ पत्ते निकल आवैं उसी को आपना गुरु देव जान उसी से मंत्र लेंगे"।

कुछ काल में उन के भाग्य बश श्री कबीर जी आये और उन का चरण धोकर ज्योंहीं उस में डाला, उसी क्षण उस ठूंठ में हरित शाखा पल्लव हो गये। तब इन दोनों भक्तों की आसा पूर्ण हुई, चरण पकड़ पकड़ के प्रार्थना की कि "हम को मंत्र दीजिये"।

कबीर जी मंत्र नहीं देते थे परंतु बड़ी कठिनता से दोनोँ भाइयों को महा मंत्र श्री राम नाम दिया; और आपका निवास श्री काशी जी में जिस टोले में था सो भले प्रकार से बता दिया कि "कोई कारज पड़े तौ हमारे समीप आना;" क्योंकि श्री कबीर जी तौ त्रिकालज्ञ थे ही होनेवाली बात जानते थे ॥

(३८२) टीका कवित्त (८४२-३८२=४६०)

काना कानी भई, द्विज जानी जाति गई, पांति न्यारी करि दई, कोऊ बेटी नहीं लेत है। चल्यो एक काशी, जहां बसत कबीर धीर, जाय कही पीर, जब पूछ्यो कौन हेत है॥ दोऊ तुम भाई, करौ आपु मैं

सगाई, होय भक्ति सरसाई, न घटाई चित चेत है। आय वहै करी, परी ज्ञाति षरभरी, कहैं कहा उर धरी, कछू मति हूँ अचेत है ॥३१३॥ (६२९—३१३ = ३१६)

वार्त्तिक तिलक।

श्री कबीर जी के जाने के अनंतर श्री तत्वा जीवा जी के ग्राम देश के ब्राह्मण लोग आपस में कहने सुनने लगे कि "कबीर जी की जाति जानते हो न"? किसी ने कहा "हां, जानते हैं, ये 'जुलाहा' हैं" तब तो तत्वा जीवा का ब्राह्मणत्व नष्ट हुआ!"

(दोहा) जाति न पूछो सन्त की परखो उनका ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥

इस प्रकार कुमंत्र कर, दोनों भक्तों को ब्राह्मणों ने अपनी पंक्ति से न्यारा कर दिया। और इन की कन्या का भी किसी ने विवाह न किया। तब एक भाई ने परम धीर श्री कबीर जी के समीप श्री काशी जी जाके प्रणाम किया; आप ने पूछा कि "किस हेतु से आये हो"? इन ने अपना दुख निवेदन किया। श्री कबीर जी ने आज्ञा दी कि "तुम्हारे दोनों भाइयों के एक२ कन्या, एक२ पुत्र है; सो आपस में बिवाह कर दो इस में तुम्हारी कोई घटी नहीं होगी तुम्हारी भक्ति की अति सरसाई होगी"। आज्ञा पा, अति प्रसन्न हो घर में आ, वैसही करने को उद्यत हो गये। बिवाहादिक के गीत सुन कर सब लोगों ने आप का निश्चय

जाना। तब तो जातिवाले ब्राह्मणों में बड़ी ही शंका हुई और आपस में कहने लगे कि इन दोनों की मति में भ्रम हो गया। यह क्या अनर्थ कर रहे हैं॥

(३८३) टीका। कवित्त (७४२—३८३=४५९)

"करैं यही बात, हमै और न सुहात," आये सबै हा हा षात, यह छाड़ि हठ दीजियै। पूछबे कों फेरि गये, करौ व्याह जौ पै नये, दंड करि नाना भांति, भक्ति कूल कीजिये॥ तब दई सुता, लई पांति न प्रसन्न ह्वै कै, पांति हरि भक्तनि सों सदा मति भीजियै। बिमुष समूह देखि समय बड़ाई करैं, धरैं हिय मांझ, कहैं पन पर रीझियै॥ ३१४॥ (६२९—३१४=३१५)

वार्तिक तिलक।

भगिनी भ्राता (बहिन भाई) का बिवाह करने में सन्नद्ध देख, सब ब्राह्मण लोग आकर, हा हा खाकर कहने लगे कि "आप दोनों, यह हठ छोड़ दीजिये, ऐसा मत कीजिये, हम आप के पुत्र कन्या दोनों का बिवाह कर लेंगे"। आप ने कहा कि "हम तो श्री गुरु आज्ञा से ऐसाही करैंगे, हमं को अब उस प्रकार बिवाह करना भला ही नहीं लगता"। पुनः अति दीन होकर सब ब्राह्मणों ने बारंबार प्रार्थना की; तब, फिर एक भाई ने श्री कबीर जी के पास आके सब वृतान्त कह, पूछा कि "जैसी आज्ञा हो?"।

श्री कबीर जी ने कहा कि "जो अब ब्राह्मण-लोग

नम्र हुए हैं तो उन को यह दंड करो कि भगवत भक्ति करैं, तब व्याह करो।" श्री गुरु आज्ञा सिर पर रख अपने गृह आ, सब को भक्ति दृढ़ कराके तब अपनी कन्याएं दीं। और उन के पंक्ति में लै लेने से कुछ प्रसन्न न हुए। क्योंकि आप तो श्री राम भक्ति के साथ ही अपनी जाति पांति मान प्रेम रस में सदा मति मग्न रहते थे।

श्री तत्वा जीवा जी का श्री गुरु बचन में ऐसा विश्वास देख बिमुख लोग सन्मुख बड़ाई करते थे, कि "हम सब तो आप के गुरु बचन पालन के प्रण ही में रीझ गये॥"

---

(३८४)मूल छप्पय छन्द।८४२—३८४=४५८)

विनै व्यास मनो प्रगट ह्वै, जग को हित "माधो" कियो॥ पहिले वेद विभाग कथित, पुरान अष्टादस। भारत आदि भागोत मथित उद्धार्‍यो हरि जस॥ अब सोधे सब ग्रन्थ अर्थ भाषा विस्तार्‍यो। लीला जै जै जैति गाय भवपार उतार्‍यो॥ जगन्नाथ इष्ट वैराग्य सींव करुणा रस भीज्यो हियो॥ बिनै व्यास मनो प्रगट ह्वै जन को हित "माधो" कियो॥७०॥(२१३-७०=१४३)

वार्तिक तिलक।

श्री माधव दास जी।

मानों श्री बिनय युक्त व्यास जी प्रगट हो कर श्री माधो दास जी ने जगत के जीवों का हित कार किया। जैसे प्रथम द्वापर में प्रगट हो कर व्यास जी ने वेदों का बिभाग किया, तथा अठारह पुराण और महाभारत बना कर सबों को मथ कर, हरि जस मय "श्रीभागवत" निकाला, वैसे ही अब माधव दास रूप हो कर, सब ग्रन्थों को ढूंढ़ बिचार, सारांश ले, भाषा ग्रंथ बिस्तार किये। उन में "जय जय कार" शब्द युक्त भगवत लीला गान की है; जिस को गा के, जीव भव सागर के पार उतर जाते हैं।

श्री जगन्नाथ जी आप के इष्ट देव थे, और आप बैराग्य की तो सीवां थे, तथा करुणा रस में आप का हृदय सदा भीगा रहता था॥

(३८५) टीका। कवित्त (८४२—३८५=४५७)

माधौ दास द्विज, निज तिया तन त्याग कियौ, लियौ इन जानि जग ऐसोई ब्योहार है। सुत की बढ़नि जोग लियें तित चाहत हो, भई यह औरै लै दिषाई करतार है॥ ताते तजि दियौ गेह, वेई सब पालैं देह, करै अभिमान सोई जानिये गँवार है। आये नीलगिरि धाम, रहे गिरि सिंधु तीर, अति मति धीर, भूष प्यास न बिचार है॥ ३१५॥ (६२९—३१५=३१४)

वार्त्तिक तिलक।

श्री माधव दास जी ब्राह्मण थे। आप की स्त्री ने प्राण त्याग दिया। देख कर आप को ज्ञान हो गया कि संसार में शरीरों का व्यवहार ऐसाही मिथ्या है। "मैं चाहता था कि यह पुत्र बड़ा हो परिवार बढ़े, परन्तु कर्त्ता प्रभू ने मुझे और ही वार्ता दिखाई" इत्यादिक बिचार कर प्रवल वैराग्य पूर्वक गृह को त्याग दिया। मन में यह बिचारते, कि "ये मेरे माता पुत्रादिक जितने देहधारी हैं उन सब का पालन परमेश्वर ही ने किया है और प्रभुही करैंगे। मैं जो इन के पालन का अभिमान करूं, तो बड़ा गँवारपना है इत्यादिक बिचार करते नीलाचल धाम में श्री जगन्नाथ जी का दर्शन कर नीलगिरि के समुद्र तीर एकांत में पड़ रहे महामति धीर भूखप्यास को त्याग केवल प्रभु के स्मरण ही में लगे रहे॥

(३८६) टीका। कवित्त (८४२—३८६=४५६)

भए दिन तीन, एतो भूष के अधीन नाहिं, रहैं हरिलीन; प्रभु शोच पर्यौ भारियै। दियौ सैन भोग, आप लक्ष्मीजू लै पधारीं, हाटक की थारी झन झन पाँव धारियै॥ बैठे हैं कुटी में पीठ दियै, हियै रूप रँगँ बीजुरी सो कौंधि गई नीके न निहारियै। देवीं सो प्रसाद, बड़ौ मन अहलाद भयौ, लयौ भाग मानि, पात्र धर्यौ ई बिचारियै॥३१६॥ (६१९—३१६=३१३)

वार्त्तिक तिलक।

तीन दिवस बीत गये; आप क्षुधा के आधीन नहीं हुए; केवल हरि-स्मरण में मन लीन रहा। आप की दशा देख श्री जगन्नाथ जी को शोच हुआ कि "मेरा भक्त तीन दिन से भूखा पड़ा है" तब जो सुवर्ण की थाली में सयन भोग धरा था, सो प्रसाद (उच्छिष्ट) कर के दिया; स्वयं श्री लक्ष्मी जी नूपुरादिकों का शब्द झन झन करती ले आईं। आप द्वार की दिसि पीठि दिये, श्री श्याम सुन्दर के रूप में रँगे हुए, बैठे थे। श्री लक्ष्मी जी आप के समीप प्रसाद रख के चली गईं। आप ने देखा कि बिजली सी चमकी, परंतु भले प्रकार दर्शन नहीं पाया! श्री महा-प्रसाद देख कर अति आनंदित हो, अपना बड़ा भाग्य मान, प्रसाद पाकर थाल वहां हीं रख दिया॥

(३८७) टीका कवित्त। (८४२--३८७=४५५)

षोलैं जो किवार, थार देखियै न, सोच पर्यौ, कर्यौ ले जतन ढूंढ़ि, वाही ठौर पायौ है। ल्याये बांधि मारी बेंत, धारी जगन्नाथ देव, भेव जब जान्यौ, पीठ चिन्ह दरसायौ है॥ कही पुनि आप मैं ही दियौ, जब लियौ याने, माने अपराध पाव गहि कै छिमायो है। भई यों प्रसिद्ध बात कीरति न मांत कहूं, सुनि कै लजात साधु, सील यह गायौ है॥३१७॥(६२९—३१७ = ३१२)

वार्त्तिक तिलक।

प्रभात में पंडा लोगों ने जब किवार खोले, तब थार नहीं देखा, सब को बड़ा सोच हुआ। यत्न पूर्वक सब के सब सर्वत्र ढूँढ़ने लगे; ढूँढ़ते ढूँढ़ते श्री माधव दास जी के समीप थाल रक्खा पाया; अबिबेकी लोगों ने इतना बिचार न किया कि "ये जो चुरा लाते तो ऐसाही क्यों रख छोड़ते"। थाल लिया, और आप को बांध कर बेंत मारे; उन बेंतों की चोट सब श्री जगन्नाथ देव जी ही ने अपने तन पर धारण कर लिया।

जब पंडा लोग प्रभु को तैल लगाने लगे, तब देखैं तो पीठ में बेंत के चिन्ह ज्यों के त्यों उबटे हैं! सब के सब शंकित हुये। प्रभु ने आज्ञा दी कि "जब हम ने उन को थाल प्रसाद दिया है तब उनने लिया है"। यह सुन सब ने श्री माधव दास जी के चरणों को गह के अपराध क्षमा कराया; यह सब वार्ता पुरी भर में प्रसिद्ध होगई। तब आप की कीर्ति अत्यंत फैल गई। सब प्रशंसा करने लगे; आप सुन के अति लज्जित होते थे, क्योंकि साधु का सुभाव ग्रंथों में ऐसाही गाया गया है॥

(३८८) टीका कवित्त। (८४२—३८८=४५४)

देखत सरूप सुधि तन की बिसरि जात, रहि जात मंदिर में जानै नहीं कोई है। लग्यौ सीत गात, सुनो बात, प्रभु कांपि उठे; दई सकलात आनि प्रीति हिये

भाई है ॥ लागे जब बेग, बेग जाय परे सिंधु तीर, चाहैं जब नीर, लियें ठाढे, दैंह धोई है। करि कै बिचार श्रौ निहारि, कही "जानों मैं तो, देत हौ श्रपार दुःख, ईशता लै खोई है" ॥३१८॥(६२९—३१८ = ३११)

वार्त्तिक तिलक।

अब तो श्राप मन्दिर में, श्री जगदीश जी का इस प्रकार सप्रेम इक टक दर्शन किया करते थे कि शरीर की सुधि बुधि सब भूल जाती थी। प्रभु इच्छा से पंडा लोग श्राप को देखते न थे, मन्दिर ही में रहि जाते थे; एक बार जाड़े में श्राप मन्दिर में उघारे रह गये, शरीर में श्रति शीत लगा, तब शीत से प्रभु भी कांपने लगे। उसी क्षण पंडाश्रों को स्वप्न देकर बुलाय, एक नवीन श्रोढ़ना मंगा के श्रोढ़ा, श्रौर श्रपनी प्रसादी श्री माधव दास जी को श्रोढाई। श्राप श्रोढ़ना प्रसादी पाकर श्रत्यंत प्रीति में भर गये।

एक समय माधव दास जी को संग्रहणी के रोग से मल पड़ने लगा; श्राप समुद्र तीर में जा पड़ रहे। जब शौच के लिये पानी चाहा, तो श्री जगन्नाथ जी ने, स्वयं जल लाके, सब देह को धोया। श्री माधव दास जी ने देख कर जाना कि "ये प्रभु हैं," हाथ जोड़ कहने लगे कि "श्राप अपनी ईश्वरता छोड़ ऐसा लघु कर्म कर के मुझको श्रत्यंत दुख देते हैं" ॥

(३८९) टीका । कवित्त (७४२-३८९=४५३)

"कहा करौं, अहो! मोपै रहो नहीं जात नेकु, मेटी बिथा गात मोकौं बिथा वह भारी है। रहै भोग शेस, और तन में प्रवेश करै; तातें नहीं दूर करौं, ईशता लै टारी है॥ वहू बात सांच, याकी गाँस एक और सुनी, साधु को न हँसै कोऊ यह मैं बिचारी है। देखत ही देखत मैं, पीड़ा सो बिलाय गई; नई नई कथा कहि भक्ति बिसतारी है ॥३११॥ (६२१-३११=३१०)

वार्तिक तिलक।

श्री जगन्नाथजी ने उत्तर दिया कि "मैं क्या करूँ, भक्तों का दुख देख मुझ को किंचित काल भी नहीं रहा जाता"। श्री माधवदास जी ने कहा कि "मेरी व्यथा ही मिटा क्यों नहीं देते?" प्रभु बोले कि "मिटा देने में मुझे एक भारी व्यथा है, कि जो मिटा दूं तो कर्म के भोग का शेष रह जाय, फिर उसको दूसरा शरीर धरके भोगना पड़ै। इसी से तुम्हारा दुख नहीं छुड़ाया अपनी ईशता को छोड़ तुम्हारी सेवा की॥

(दो०) तुलसी रेखा कर्म्म की, मेंटत हैं नहिँ राम।
मेटैं तो अचरज नहीँ, समुझि किया है काम॥

सो यह वार्ता भी सत्य है, पुनः प्रभु ने कहा कि "इसकी एक दूसरी गांस सुनो, जिस लिये मैंने सेवा की है जिस में कोई मनुष्य किसी भक्त की हँसी न करै कि देखो भगवत भक्ति का कुछ फल नहीं है;

'यह सन्त कैसे दुख में पड़े हैं, कोई एक लोटा जल तक देने वाला नहीं।' इस प्रकार बिचार के मैंने सेवा की है।

प्रभु के दरसन तथा स्पर्श से बात की बात में देखते देखते ही आपकी समस्त पीड़ा बिलागई।

श्री माधवदास जी ने श्री पुरी में बिराजे हुए नई नई कथा काव्य रचना कर श्रीभगवतभक्ति को अत्यंत बिस्तार किया ॥

(३९०) टीका । कबित्त (८४२-३९०=४५२)

कीरति अभंग देखि भिच्छा को अरंभ कियौ, दियौ काहू बाई पोता षीझत चलाय कै। देवौ गुण लियौ नीके जलसों प्रछाल करि, करी दिब्य बाती, दई दियें मैं बराय कै॥ मंदिर उँजारौ भयौ, हिये का अन्ध्यारौ गयौ, गयौ फेरि देखन कौं, परी पाय आय कै॥ ऐसे हैं दयाल, दुख देत में निहाल करैं; करैं लै जे सेवा ताको सकै कौन गायकै ॥३२०॥ (६२९-३२०=३०९)

वार्तिक तिलक ।

श्रीमाधवदास जी अपनी अभंग कीर्ति देख भिक्षा मांगने लगे। एक दिवस एक अति कृपण वृद्धा बाई के घर भिक्षा मांगने गये; वह गृह पोत रही थी। आपने दो बार मांगा, अत्यंत क्रोध कर उसने पोतनेवाला वस्त्र ही फेंक मारा। आपने कृपालुता से बिचार किया कि "इसने कुछ वस्त्र दिया तो" आपने उस वस्त्र को ले लिया।

(पद) संतनि की यह रहनि सदा है। गुन में गुन देखैं,
अचरज क्या ? दोषी में गुन गहनि महा है ॥"
(श्री काष्ठजिह्वा स्वामी)

आपने जल में धो, स्वच्छ कर, उस पोतने की बाती बना श्री जगन्नाथ जी के मन्दिर के दीपकों में लगा (बार) दिया। जब मन्दिर में उन बत्तियों का प्रकाश हुआ, उसी क्षण उस माई के हृदय का भी अज्ञान कृत अंधकार जाता रहा। दूसरे दिन आप कृपाकर उसके घर फिर भिक्षा माँगने गये। वह देखतेही चरणों पर गिर पड़ी। आपकी कृपा से उसको भक्ति उत्पन्न हुई। आपने धनादिकों से संत सेवा कर भवपार होगई।

आप ऐसे दयालु थे कि उसने तो मारा दुख दिया, और आपने उसको कृतकृत्य निहाल कर दिया। दोष में गुण लेना सन्तोंहीं का काम है। भला ऐसे शुद्ध संतों की जो कोई सेवा करै तो उसका फल कौन कह सकता है॥

(३९१) टीका कवित्त। (७४२—३९१=३५१)

पंडित प्रबल दिग विजै करि आयौ; आय बचन सुनायौ "जू! बिचार मोसों कीजियै"। दई लिषि "हारि;" काशी जाय कै निहारि पत्र, भयौ अति ख्वार, लिषी जीति वाकी, षीजियै॥ फेरि मिलि माधौ जू कौं वैसे ही हरायौ, एक षर कौ मँगायौ कही "चढ़ौ जय धीजियै"। बोल्यौ "जूती बांधो कान," गयौ सुनि न्हान; आन जगन्नाथ जीते; लेचढ़ायौ वाकौ, रीझियै॥ ॥ ३२१ ॥ (६२९—३२१ = ३०८)

वार्त्तिक तिलक।

एक समय एक बड़ा प्रबल पंडित, चारों दिशाओं में बिजय कर, श्री जगन्नाथ पुरी में आया और यहां के सब पंडितों से कहा कि "मुझ से शास्त्रार्थ करो"। पंडितों ने इस की प्रबल पांडित्य देख कहा कि 'तुम श्री माधव दास जी को जीत लो तो मानों हम सब को जीति लिया"।

उस ने श्री माधव दास जी से जा कहा कि "मुझ से शास्त्रार्थ कीजिये'। आप ने उत्तर दिया कि "हम तुम से हारे हैं"। पंडित बोला कि "लिख दो" आपने अपनी हार लिख दी। श्रीकाशी में आ वह पत्र पंडितों को दिखा, स्वयं देखा सो प्रभु की कृपा से पत्र में लिखा था कि "माधव दास जी जीते, दिग्विजयी पंडित हारा"। यह देख पंडित अति क्रोध युक्त फिर माधव दास जी के पास आके कहने लगा कि "तुम ने छल कर अपनी जीत लिख दी थी, अब मुझ से शास्त्रार्थ करो, मैं तुम को हरा के दोनों कानों में जूतियां बांध गदहे पर चढ़ा पुरी भर में फिराऊँगा"। श्री माधव दास जी इस के क्रूर बचन सुन बोले कि "मैं स्नान कर आऊं, तब शास्त्रार्थ करूं"। ऐसा कह के चले गये। तदनंतर श्री जगन्नाथ जी माधवदास जी का रूप धर, पंडति को हरा, उस्के कानों में जूतियां बंधा, गधे पर चढ़ा, पुरी भर में फिराने लगे।

श्रीर श्राप बहुत से लोगों को संगलें पीछे से ताली थपोड़ी बजा हँसते ठहाका लगाते थे। पश्चात् श्राके उस मूर्ख पंडित को श्री माधव दास जी ने छोड़वा दिया ॥

(३९२) टीका कवित्त (८४२-३९२=४५०)

ब्रज ही की लीला सब गावैं, नीलाचल मांझ; मन भई चाह "जाय नैननि निहारियै।" चले वृन्दावन, मग लग एक गांव जहां बाई भक्त, भोजन कों ल्याई चाव भारियै ॥ बैठे ये प्रसाद लेत; लेत दृग भरि, "श्रहो! कही कहा बात दुख हिये की उघारियै'? । "साँवरी कुंवर यह कौंन की भुराय ल्याये ? माय कैसें जीवै"। सुनि मति लै बिसारियै ॥३२२॥(६२९—३२२ = ३०७)

वार्त्तिक तिलक ॥

श्री माधव दास जी वृन्दाबन (ब्रज) की ही सब लीला जगन्नाथ धाम में गाया करते थे; मन में चाह उत्पन्न हुई कि नेत्रों से श्री वृन्दावन जी का दरसन कर श्राऊं" श्राप वृन्दाबन को चल दिये।

मार्ग के एक ग्राम में एक बाई भगवत भक्ता थी वह श्रापका दर्शन कर बड़े प्रेम से घर लाय प्रसाद पवाने लगी; उस बड़ भागिनी को श्री जगन्नाथ जी ने, (दस) १० वर्ष का बालक बन श्राप के समीप ही में, दर्शन दिया। वह भक्तिवती दर्शन पा नेत्रों से जल ढारने लगी। माधव दास जी ने कारण पूछा, माई बोली कि "यह सांवला साँवलासा सुन्दर बालक किस का भुला

के (फुसला के) आप अपने साथ लिवा लाये हैं? इस के वियोग से इस की मैया कैसे जीवेगी।" सुन कर श्री माधव दास जी जान गये कि इस को प्रभु ने दर्शन दिया। इस्से आप भी प्रेम में मग्न हो गये॥ श्री कृपा की जय॥

(३०३) टीका कवित्त (८४२-३८४=४४८)

चले और गाँव, जहां महाजन भक्त रहै, गहै मन मांझ, आगे बिनती हूं करी है। गये ताके घर; वह गयो काहू और घर; भाय भरी तिया आनि पायन मै परी है॥ ऊपर महंत कही "अजू एक संत आए;" "इहाँ तौ समाई नाहिं;" आई अरबरी है। कीजिये रसोई;" "जोई सिद्ध सोई ल्यावो;" दूध नीके कै पिवायो; नाम "माधौ" आस भरी है॥३२३॥(६२९-३२३=३०६)

वार्त्तिक तिलक।

आप उस माई के ग्राम से आगे चले। एक दूसरे गांव में आये; वहां एक वैश्य महाजन भक्त था वह जब प्रथम जगन्नाथ पुरी में गया था तो श्री माधव दास जी से अपना नाम ग्राम बता प्रार्थना की थी कि "जो श्री वृन्दावन आइये तो मुझे दर्शन दीजियेगा।" उस के घर में गये, वह कहीं गया था; उस की स्त्री बड़ी भक्तिवती थी, उस ने आप के चरणों में प्रणाम किया उस की अटारी पर एक वैष्णव महंथ थे उसने उन से कहा कि "एक और संत आये हैं;" उनने उत्तर

दिया कि यहां समाई नहीं है" तब वह भक्ता घबड़ा के आप से रसोई करने की प्रार्थना करने लगी। आप बोले "जो सिद्ध पदार्थ हो सो ला" वह चीनी मिला के दूध लाई। आप ने प्रभु को अर्पण कर पान किया अपना नाम "जगन्नाथी माधौ दास" बताया कि "मेरा आगमन अपने पति से कह देना" ॥

(३९४) टीका कवित्त (८४२—३९३=४४८)

गये उठि; पाछे भक्त आयौ, सो सुनायौ नाम; सुनि अभिराम, दौरे संग ही महंत हैं। लिये जाय पाय लपटाय; सुष पाय मिले; भिले घर मांझ; "तिया धन्य तो सों कंत है" ॥ संत पति बोले "मैं अनंत अपराध किये ! "जिये अब," कही "सेवो सीत मानि जंत है। आवत मिलाप होय, यही राखौ बात गोय;' आये वृन्दाबन जहाँ सदाई बसंत है ॥३२४॥(६२९—३२४=३०५)

"सन्तपति"=महान्त। "जंत"=यत्न, उपाय।

वार्तिक तिलक।

श्री माधव दास जी उठ के चल दिये। पश्चात कुछ ही काल में बड़ भागी आया, और आप का नाम सुन अति प्रेम से दौड़ा; तथा आप का नाम सुन साथ ही वह महंथ भी दौड़ा; श्री माधव दास जी के चरणों में लिपट गये; आप सुख पूर्वक मिले, और लौट के भक्त के घर में आय बोले, कि ऐसी भक्ति-युक्त नारी धन्य तथा उस का प्रिय-पति तू धन्य है ॥

उस महंथ ने हाथ जोड़ श्री माधव दास जी से बिनय किया कि "मैं ने आप का अमित अपराध किया; सो कैसे छूटे ?" आप ने आज्ञा दी कि "जब तक जियो तब तक वैष्णवों का सीत प्रसाद सेवन करो; अपराध छूटने का यही यत्न जानो, जब बैष्णव आवैं तब उनसे मिलि दंडवत प्रणाम कर, सत्कार किया करो; यह मेरी कही वार्ता कृपा के प्रीति से हृदय में धर रक्खो"।

फिर श्री माधव दास जी वहां से चल, जहां सदा बसंत ऋतु सरीखा आनन्द रहता है उस श्री वृन्दावन में आये॥

(३९५) टीका कवित्त (८४२-३९५=४४७)

देखि देखि वृन्दावन मन मे मगन भये, गये श्री बिहारी जू के चना तहां पाये हैं। कहि रह्यो द्वारपाल "नेकु में प्रसाद," लाल यमुना रसाल तट भोग कों लगाये हैं॥ नाना विधि पाक धरैं, स्वामी आप ध्यान करैं, बोले हरि "भावैं नाहिं वेई लै खवाये हैं"। पूछ्यो, सो जनायौ, ढूंढ़ि ल्यायौ, आगे गायौ सब, "तुम तौ उदास, हां सरस समझाये हैं॥३२५॥(६२९-३२५=३०४)

बार्तिक तिलक।

श्री वृन्दावन देख देख आप का मन प्रेमानन्द में मग्न हुआ; फिर "श्री बांके बिहारी जी" के मन्दिर में दरसन को गये; वहां बाहर ही किसी ने चने दिये।

द्वारपाल ने कहा "कुछ ही बिलंब में आप को प्रसाद भी मिलेगा, थाल गया भोग लग रहा है"; आप ने बिचारा कि "क्षुधा की निवृति तो चनों ही से हो जावेगी"।

श्री यमुना तट रसाल बन में आके श्री गोपाल लाल को अर्पण कर चने पाके बैठे रहे। यहाँ बिहारी जी के आगे नाना प्रकार के व्यंजन धर मंदिर (स्थान) के महंत स्वामी जी ध्यान करने लगे भावना में बिहारी जी बोले कि "हम को तो एक प्रिय भक्त ने चने भोग लगा दिये; इस्से इन सब पदार्थों की क्षुधा ही नहीं है" स्वामी ने प्रार्थना कर पूछा कि उन भक्त जी का क्या नाम है कहां हैं? "प्रभु नें बताया, तब लोग दौड़ के श्री माधव दास जी को ढूंढ लाये। आप आये चनों को पाने पवाने का वृतान्त कहा। बिहारी जी के यहां के महंत हँस के कहने लगे कि "आप तो उदासीन बिरक्त हैं, चने ही ले के चल दिये। सो जगत से उदासीन होना तो भला है, परंतु रसिकराज बिहारी लाल से और उन के प्रसाद से उदासीन होना उचित नहीं' ॥

(३९६) टीका कवित्त (८४२-३९६=४४६)

गये ब्रज देखिबे कों; "भांडीर" में "खेम" रहे निसि को दुराय खाय क्रिमि लै दिखाये हैं। लीला सुनिबे कों "हरियाने,, गांव रहे जाय गोबरहूं पाथि पुनि नीलाचल धाये हैं॥ घर हूं को आये सुत सुधी सुनि

माता वानी, मारग में स्वप्न दै के बनिक मिलाये हैं। याही बिधि नाना भांति चरित अपार जानो, जिते कछु जाने तिते गाय के सुनाये हैं ॥३२६॥(६२९—३२६=३०३)

वार्तिक तिलक।

किसी और दिन आप वहाँ से ब्रज के सब स्थल को देखने गये; भांडीर बट में आये, वहाँ एक "खेमदास" नामक वैरागी रहता था; वह प्रथम तो आप को अपनी कुटी में रहने ही न देता था, परंतु आप रहे सो आप को तो उस ने कुछ रूखा सूखा सा प्रसाद पवा दिया, और आप रात्री में छिपा के, खीर खाने लगा। श्री माधव जी ने उसका कपट जाना इससे दिखा दिया कि वह संपूर्ण खीर के चावल कीड़े होकर रेंगते थे। तब तो वह दीन तथा बिकल होकर आपके चरणों में आ गिरा। आप ने बहुत प्रकार से सदुपदेश देकर उसको संत-सेवा में प्रवृत किया।

फिर श्री वृन्दावन से चले "हरियाने" में "गोली" नामक ग्राम में भगवत लीला भागवत कथा बहुत अच्छे प्रकार से होती थी वहां रह के कथा सुनने लगे। आप ऐसे निराभिमान कि वहीं का गोबर नित्त आपही पाथ दिया करते थे। पीछे लोग आप को जान चरणों में पड़े।

पुनः वहीं से श्री जगन्नाथ धाम को चले, मार्ग में आपके गृहस्थाश्रम में निवास वाला ग्राम मिला

आपने विचारा कि "माता को भी देखता चलूं" गृह के समीप लोगों से माता और पुत्र का कुशल सुना; किसी ने दौड़ के माता से कहा कि तेरा पुत्र आया है।

माता जी बोलीं कि "मेरा पुत्र विरक्त हो करके फिर घर आवे, ऐसा कपूत नहीं है।" आप माता के शुभ वचन सुन संकुचित हो शीघ्रही लौट-चले। फिर जिसके हां प्रथम गए थे उस भक्त वैश्य के ग्राम के निकट आये तब उसको स्वप्न देकर बुलाके, मिल कर, श्री जगन्नाथ धाम में चले आये॥

इसी भांति, श्री माधवदास जी के अनेक अपार चरित हैं; मैं जितने चरित जानता था, उतने गाके सुना दिये॥

---

(३९१) मूल छप्पय। (८४२--३९१=४४५)

(श्री)रघुनाथ गुसांई गरुड़ ज्यों, सिंह पौरि ठाढ़े रहैं॥ सीत लगत सकलात विदित पुरुषोत्तम दीनी। सौच गये हरि संग कृत्य सेवक की कीनी॥ जगन्नाथ पद प्रीति निरंतर करत खवासी। भगवत धर्म प्रधान प्रसन्न नीलाचल वासी॥ उतकल देस उड़ीसा नगर "बैनतेय"

सब कोउ कहैं ॥ (श्री) रघुनाथ गुसाईं
गरुड़ ज्यौं, सिंह पौरि ठाढ़े रहैं ॥ ७१ ॥
(२१३—७१ = १४२)

वार्तिक तिलक।

श्रीरघुनाथ गुसाईं।

जिस प्रकार श्री भगवत के अग्र भाग में श्री गरुड़ जी खड़े रहते हैं, उसी प्रकार श्री रघुनाथ गुसाईं जी श्री जगन्नाथ जी के आगे "सिंह पौरि ड्योढ़ी" पर खड़े रहते थे। एक समय आप को रात्रि में अत्यंत जाड़ा लगने पर स्वयं श्री पुरुषोत्तम जी ने ओढ़ने को दुलाई दी; यह बात प्रसिद्ध है। और, जब रोग से गुसाईं जी को मल गिरने लगा, तब प्रभु ने सेवक की नाईं अंग प्रक्षालन आदि कृत्य किया। श्री जगन्नाथ जी के पद कमल में आप की अत्यंत प्रीति थी। निरंतर सेवा करते थे। भागवत-धर्म करने कराने वालों में प्रधान, प्रसन्नता पूर्वक नीलाचल में वास करते थे।

बरन उड़ीसानगर के तथा उत्कल देश के निवासी सब श्री रघुनाथ गुसाईं जी को "गरुड़ जी" ही कहा करते थे॥

(३९८) टीका। कवित्त (८४२—३९८=४४४)

अति अनुराग घर संपति सों रह्यो पागि, ताहू करि

त्याग कियो नीलाचल बास है। धन को पठावै पिता ऐ पै नहीं भावै कछू देखिबो सुहावै महा प्रभू जी को पास है॥ मंदिर के द्वार, रूप सुन्दर निहाखो करैं, लग्यो सीत गात सकलात दई दास है। सोच संग जायवे की रीति कों प्रमान वहै वैसे सब जानो माधौ दास सुषरास है॥ ३२७ ॥(६२९—३२७ = ३०२)

वार्तिक तिलक

श्री रघुनाथ गुसाईं जी का घर सर्व सम्पत्ति से भरा था; उस को भी त्याग कर अनुराग पूर्वक "नीलाचल" में आपने निवास किया। आप के पिता जी गृह से धन भेजते थे, परंतु आप को प्रिय नहीं लगता; केवल महाप्रभुजी का दर्शन तथा समीप रहना प्रिय लगता था। श्री जगन्नाथ जी के द्वार पर खड़े सुन्दर रूप को देखा करते थे। एक रात जब शरीर में शीत लगा, तब प्रभु ने अपने दास को दोलई दी; और रोग से शौच जाने पर प्रभु की सेवा करने की रीति, प्रथम जैसी श्री सुखराशि माधवदास जी की कथा में लिखी है, उसी प्रकार जानिये॥

(३२८) टीका। कवित्त [७४२—३२८=४१४]

महा प्रभु कृष्ण चैतन्य जू की आज्ञा पाइ, आये "वृन्दा बन," "राधा कुंड" बास कियो है। रहनि, कहनि, रूप चहनि, कहि न सकै, थकै सुमि; तन भाव रूप करि लियो है॥ मानसी में पायो दूध भात, सर-

सात हिये, लिये रस नारी देखि वैद कहि दियो है।
कहां लों प्रताप कहों; आपुही समझि लेहु, देहु वही
रीझि जासो आगे पाय जियौ है॥३२८॥(६२९-३२८=३०१)

वार्त्तिक तिलक।

श्री जगन्नाथ धाम से महा प्रभु कृष्ण चैतन्य जी की आज्ञा पाके, आपने, श्री वृन्दाबन आ, श्री राधाकुंड में निवास किया। आप की रहनी, कहनी, प्रभु के रूप की चाह कही नहीं जाती; सुन सुन के मति थक जाती है; स्वस्वरूप तथा परस्वरूप की भावना करते करते इस शरीर और भावना रूप दोनों ही को एक करलिया।

एक समय आप का शरीर सरुज हुआ तब आपने मानसी सेवा में प्रभु को दूध भात भोग लगाया। और श्री नंदलाल जी का दिया हुआ वही प्रसाद आपने सरस हृदय से ग्रहण किया। उस का रस इस पंच-भौतिक शरीर में व्याप्त हो गया। वैद्य ने नाड़ी देख कर सबों से कह दिया कि "इनने तो आज दूध भात पाया है।" हे सज्जनो! मैं इन महानुभाव का प्रताप कहां तक कहूं; आप सब स्वयं समझ लीजिये। जैसा आगे, श्री रघुनाथ गुसाइं जी भावना कर जिए थे कृपा कर के वैसा ही बरदान मुझे भी दीजिये कि जिसको पाके आगे कृत कृत्य हूं॥

[४००] मूल छप्पय । [८४२—४००=४४२]

नित्यानंद कृष्ण चैतन्य की, भक्ति दसों दिसि विस्तरी ॥ "गौड़ देस" पाषंड मेटि कियौ भजन परायन। करुणासिंधु कृतज्ञ भये अगनित गति दायन ॥ दसधा रस आक्रांति, महत जन चरण उपासे। नाम लेत निहपाप दुरित तिहिँ नरके नासे ॥ अवतार विदित पूरब मही, उभै महँत देही धरी ॥ नित्यानन्द कृष्ण चैतन्य की, भक्ति दसों दिसि निस्तरो ७२(२१३-७२=१४१)

"दस दिशा"=चारो कोन और नीचे ऊपर सहित दस दिशा।
"दसधा"=नवधा भक्ति तथा प्रेमाभक्ति ।

वार्तिक तिलक ।

"श्री निस्यानंद" जी की, तथा "श्री कृष्ण चेतन्य" महाप्रभु जी की भक्ति दसौ दिशाओं में बिस्तार हुई। गोड़ (बंगाल) देश का, पाखंड मिटा के, जीवों को आपने भगवत भजन में परायण किया। दोनों महात्मा करुणासिंधु, अति कृतज्ञ ने अगनित जीवों को गति दी

आप का हृदय दशधा, नाम प्रेमा, भक्ति से सदा पूर्ण रहा करता था। आप के चरणों की उपासना बड़े बड़े महात्मा लोगों ने की। जो कोई आप का

नाम जपते हैं उन के दुरित पाप नाश हो जाते हैं, निष्पाप हो जाते हैं। पूर्व देश की भूमि में, "श्री बलदेव जी तथा श्री कृष्णचन्द्र जी ने अपने अंशों से दोनों महंतों की देह धर कर अवतार लिया; यह बात विख्यात ही है॥

(१) श्री कृष्णचैतन्य जी। (२) श्री नित्यानन्द प्रभु जी॥

[४०१] टीका कवित्त। [८४१—४०१=४४१]

आप बलदेव सदावारुणी सो मत्त रहैं, चहैं मन मानो प्रेम मत्तताई चाषियै। सोई नित्यानन्द प्रभु महँत की देह धरी, भरी सब आनि तऊ पुनि अभिलाषियै॥ भयो बोझ भारी, कि हूं जात न संभारी, तब ठौर ठौर पारषद मांझ धरि राषियै। कहत कहत और सुनत सुनत जा के, भये मतवारे; बहु ग्रंथ ताकी साषियै॥ ॥ ३२९ ॥ (६२९—३२९ = ३००)

वार्तिक तिलक।

श्री नित्यानंद प्रभु जू।

प्रथम द्वापर अवतार में आप श्री बलदेव जी श्री कृष्ण भगवान् के बड़े भाई (दाऊ जी) वारुणी पान कर मत्त रहते थे, फिर आपने मन में चाह किया कि "अब मैं प्रेम की मत्तता भी चखूं;" इसी हेतु से आप ने "श्री नित्यानन्द" महंत जी का शरीर धारण किया। और, सम्पूर्ण प्रेम मत्तता लेकर अपने हृदय में भर लिया; तथापि और प्रेमाभिलाषा बनी ही रही।

आप को उस मादकता का ऐसा भारी बोझा हुआ कि किसी प्रकार सँभाला नहीं जाता, तब कृपा करके ठौर ठौर अपने शिष्य पारषदों को थोड़ा थोड़ा दे दिया, जिस प्रेम माधुरी के कहते कहते तथा सुनते सुनते कितने अनुरागी मतवारे हुए। उन के चरित्रों के, और प्रेम वाक-विलास के बहुत से ग्रंथ साक्षी हैं॥

श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु जू।

[४०२] टीका कवित्त ।[८४२—४०२=४४०]

गोपिन के अनुराग आगे, आप हारे श्याम, जान्यो यह लाल रंग कैसे आवै तन मैं। येतौ सब गौर तनी नख सिख बनी ठनी, खुल्यौ यों सुरंग अंग अंग रंगे बन मैं॥ श्यामताई मांझ सो ललाई हूं समाई जोही, ताते मेरे जान फिरि आई यहै मन मैं। "जसुमति सुत" सोई "शची सुत" गौर भये, नये नये नेह चोज नाचै निज गन मैं ॥३३०॥(६२९—३३० = २९९)

वार्तिक तिलक।

श्री गोपीगणों के अपार प्रेम के आगे श्यामसुन्दर श्री कृष्ण जी हार गए, तब विचार किया कि "इस प्रेम का लाल रंग मेरे तनु में किस प्रकार आवे, ये गोपिका वृन्द गौर तन जुक्त नख शिख सृंगार से लड़झर बनी ठनी हैं"। उन के तब शोभा युक्त सुरंग अंगों का संग बन में करने से आप की झलाझल श्याम-

ताई में, गोपिकाओं के अंग की ललाई समा गई; अपने को गौर देखा। इस लिये मुझे जान पड़ता है कि आप के मन में यह बात आई कि "अब मैं गौरांग शरीर धारण करूं"। सोई श्री जसोदा नंदन कन्हैया अब गौरांग शचीनंदन "श्रीकृष्णचैतन्य" जी हुए। और जैसे प्रथम गोपियों के संग रास में नाचते थे, वैसे ही फिर अब अपने अनुरागियों के बीच में, स्नेह के चुटीले पद गान कर नाचते थे, प्रेम की जय!!

[४०३] टीका। कवित्त [८४२—४०३=४३९]

आवै कभू प्रेम हेमपिंडवत तन होत, कभूं संधि संधि छुटि अंग बढ़ि जात है। और एक न्यारी रीति आँसू पिचकारी मानों, उभै लाल प्यारी भाव सागर समात हैं॥ ईशता वखान करौ सो प्रमान याकों काह? "जगन्नाथ क्षेत्र नेत्र निरखि साक्षात है"॥ चतुर्भुज षट-भुज रूप लै दिखाय दियो, दियो जो अनूप हित बात पात पात है॥३३१॥ (६२९—३३१ = २९८)

वार्तिक तिलक।

आप को कभी प्रेमावेश होता था तब गौर शरीर तप्त सुवर्ण के पिंड की नाईं लाल हो जाता था, और कभी प्रेम से संधि संधि छूट अंग अंग फूलि उठते थे। आप की एक रीति और लोक से न्यारी थी, कि प्रेम के आंसू इस प्रकार चलते थे मानों श्री लाल जी की तथा प्यारी जी की युगल पिचकारी छूटती हैं। इस प्रकार प्रेम भाव के समुद्र में आप डूबे रहते थे।

जो कहिये कि मूल, टीका के कवित्तों, में आप की ईशता का बखान किया है सो इस का प्रमाण करी, तौ जगन्नाथ क्षेत्र में सब ने नेत्रों से साक्षात देखा है कि एक समय प्रेम नृत्य करते करते चतुर्भुज हो कर आप ने दरशन दिया। तब लोगों ने कहा कि चतुर्भुज़ हो जाना तौ इस क्षेत्र का प्रभाव ही है तदनंतर आप ने खट भुज हो कर दरशन दिया। आप ने जो हितोपदेश जीवों को दिया सो वार्ता पत्र में लिखी है अद्यापि वहां आप के षटभुज मूर्ति का दरशन होता है॥

[४०४] टीका। कवित्त [८४२—४०४=४३८]

कृष्ण चैतन्य नाम जगत प्रगट भयौ, अति अभिराम लै महंत देही करी है। जितौ गौड़ देश, भक्ति लेसहूँ न जानै कोऊ, सोऊ प्रेम सागर में बोख्यौ कहि "हरी" है॥ भए सिर मौर एक एक जग तारिबे कों धारिबे कों कौन साखि पोथिन मैं धरी है। कोटि कोटि अजामेल वारि डारै दुष्टता पै, ऐसे हूं मगन किये, भक्ति भूमि भरीहै॥३३२॥(६२९—३३२ = २९७)

वार्तिक तिलक।

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी अति अभिराम महंत देह धारण कर "श्री कृष्ण चैतन्य" नाम से जगत में प्रगट हुए। जितना गौड़ बंगाल देश था उस में कोई लेश मात्र भक्ति न जानता था; वहां के लोगों को "हरि हरि" नाम जपना उपदेश कर प्रेम सागर में डुबा दिया।

(दो०) सकल तत्व को सार, अकथ अनूपम, रामहित ।*
"प्रेम" अतर्क अपार, बरनि सकै सो कौन अस ?

* पण्डित उपाध्याय श्रीरामहित शर्म्मा, रामपूर, नगरा, सारन छपरा ॥

आप के शिष्य प्रशिष्यादि अनेक शिर-मौर हुए, कि एक एक महानुभाव ने जगत के अनेक लोगों को तार दिया। उन की साक्षी पुस्तकों में लिखी धरी है। जिन की दुष्टता पै कोटिन अजामेल सरीखे पापियों को न्योछावर कर दीजिये, वैसे दुष्टों को भी प्रेम में मग्न कर भक्ति भूमि भर में भर दिया ॥

(४०५) मूल छप्पय। (८४२-४०५=४३७)

"सूर" कवित सुनि कौन कवि, जो नहिँ सिर चालन करै ॥ उक्ति, चोज, अनुप्रास, बरन अस्थिति, अति भारी। बचन प्रीति निर्वाह, अर्थ अद्भुत तुक धारी ॥ प्रतिबिंबित दिवि दिष्टि हृदय हरि लीला भासी। जनम करम गुन रूप बैस रसना परकासी॥ विमल बुद्धि गुन और की, जो यह गुण श्रवननि धरै। सूर कवित सुनि कौन कवि, जो नहिँ सिर चालन करै ॥७३॥

(२१३--७३ = १४०)

वार्त्तिक तिलक।

श्री सूर जी।

ऐसा कौन कवि है? कि जो श्री सूरदास जी का कवित्त सुन कर प्रशंसा पूर्वक अपना सीस न हिलावै। उन की कविता में बड़ी भारी नवीन युक्तियां, चोज, चातुर्य्य, बड़े अनूठे अनुप्रास, और, बर्णों की यथार्थ बड़ी भारी स्थिति है। कवित्त के आदि में जिस प्रकार का बचन तथा प्रेम उठाया उस का अंत तक निर्वाह किया। और कविता के तुकों में अद्भुत अर्थ धरा है। आप के हृदय में प्रभु ने दिव्य दृष्टि दी, जिस में सम्पूर्ण श्री हरि लीला का प्रतिबिंब भासित हुआ। सो, प्रभु का जन्म तथा कर्म और गुण, रूप सब दिव्य दृष्टि से देखकर अपनी रसना, (जीभ) बचन, से प्रकाशित किया।

जो और कोई जन श्री ५ सूर कथित भगवत गुन गन अपने श्रवण में धारण करै तौ उस की भी बुद्धि विमल गुण युक्त हो जाय। कहते हैं कि आप ने सवा लाख भजन (पद) का अपने मन में संकल्प किया था, पर लाख ही बना के शरीर त्यागा; श्री कृष्ण भगवान् ने स्वयं पच्चीस सहस्र कह के उस ग्रन्थ को और अपने भक्त के वासना को पूरा कर दिया॥

(दो०) किधों सूर कौ शर लग्यौ, किधों सूर की पीर।
किधों सूर कौ पद सुन्यौ, यों सिर धुनत अधीर॥

सूर सूर (सूर्य्य) तुलसी शशी, उड़गन केशव दास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकास॥

(४०६) मूल छप्पय (८४२—४०६=४३६)

ब्रज बधू रीति कलियुग बिषै, "पर-
मानंद" भयौ प्रेम केत॥ पौगंड, बाल,
कैशोर, गोपलीला सबगाई। अचिरज कहा
यह बात हुतौ पहिलौ जुसखाई॥ नैननि
नीर प्रवाह, रहत रोमांच रैन दिन। गद
गद गिरा उदार श्याम सोभा भीज्यौ तन॥
"सारंग" छाप ताकी भई, श्रवण सुनत आ-
वेस देत। ब्रज बधू रीति कलियुग बिषै
परमानन्द भयौ प्रेम केत॥ ७४॥
(२१३—७४ = १३९)

वार्तिक तिलक।

श्री परमानन्द जी।

द्वापर में जिस प्रकार गोपी जनों की रीति थी, उसी प्रकार कलियुग बिषै श्री परमानंद जी प्रेम के स्थान हुए। श्री कृष्णचन्द्र के जन्म से पांच वर्ष तक की बाल लीला, तथा १० बर्ष तक की पौगंड लीला, और दस से सोरह वर्ष के भीतर की कैशोर लीला,

ये सब गोप्य चरित्र गान किये। सो इस वार्ता का क्या आश्चर्य है, क्योंकि ये श्री नन्दनन्दन के प्रथम के सखा ही तो हैं। आप के नेत्रों से प्रेम वारि का प्रवाह, तथा शरीर में रोमांच, रात्रि दिन बना रहता था। और आप की उदार बाणी सदा गद्गद रहती थी। श्रीश्याम सुन्दर की शोभा से तन मन भीगा रहता था। आप ने अपनी कविता में "सारँग" छाप दिया है। आप की कविता सुनते मात्र में प्रेमावेश देती है॥

(४०७) मूल छप्पय (८४२–४०७=४३५)

"केशौ भट" नर मुकुट मणि, जिन की प्रभुता विस्तरी॥ "कास्मीरि" की छाप; पाप तापनि जग मंडन। दृढ़ हरि भक्ति कुठार, आन धर्म बिटप विहंडन॥ मथुरा मध्य मलेछ, बाद करि, बरबट* जीते। काजी अजित अनेक देखि परचै भै भीते॥ विदित बात संसार, सब संत साखि नाहिन दुरी॥ "केशौ भट" नर मुकुट मणि, जिन की प्रभुता विस्तरी॥७५॥
(२२३—७५ = १३८)

* "बरबट"=पाखंडी, मिथ्या मार्ग वाले।

वार्तिक तिलक।

श्री केशव भट्ट जी।

श्री केशव भट्ट जी सब नरों के मुकट मणि हुए, कि जिन की प्रभुता जगत में बिस्तार हुई। आप की "काश्मीरी" की छाप थी; आप पापों के ताप देने वाले जगत को शोभित करने वाले हुए। भगवत धर्म से बिरुद्ध अन्य धर्म रूपी वृक्षों के काटने को आप ने हरिभक्ति रूपी दृढ़ कुठार धारण कर, उन को निर्मूल किया। मथुरा जी के मध्य में म्लेच्छ यवनों से विवाद कर उन बरबटों को हरा कर बिश्रान्त घाट के श्रेष्ठ मार्ग को जीत लिया।

अनेक दुष्ट "क़ाजी" चेटकी जिन्हैं किसी ने न जीते थे, वे आप का परचौ प्रभाव देख अति भय युक्त हुए; यह सब वार्ता संसार में विदित है। छिपी नहीं है। सब संत साक्षी हैं कि विश्रान्त घाट के मार्ग का बिघ्न "श्री केशव भट्ट काश्मीरी" जी ने नाश किया॥

(४०८) टीका। कवित्त (८४२-४०८=४३४)

करि दिग बिजै, सब पंडित हराय दिये, लिये बड़े बड़े जीति, भीति उपजाई है। फिरत चौडोल चढ़े, गज बाजि लोग संग, प्रतिभा को रंग, आए "नदिया" प्रभाई है॥ डरे द्विज भारी, महाप्रभू जू बिचारी तब, लीला विस्तारी, गंगा तीर सुख दाई है। बैठे ढिग आय, बोले, नम्रता जनाय, "रह्यो जग जसु छाय, नेकु सुनै मन भाई है" ॥३३३॥ (६२९—३३३=२९६)

वार्तिक तिलक।

प्रथम अवस्था में, श्री केशव भट्ट जी ने दिग्विजय कर, सब पंडितों को हराय, बड़े बड़े विद्या बुद्धि युक्तों को जीत कर, भय उत्पन्न किया। चौडोल नामक पालकी पर चढ़े बहुत से घोड़े हाथी मनुष्यों को संग लिये, प्रतिभा बुद्धि के रँग में रँगे, फिरते फिरते नदिया (नवद्वीप) शांतीपुर आये; वहां के ब्राह्मण बड़े बड़े पंडित नैयायिक श्री केशव भट्ट जी का प्रभाव देख कर डर गये। तब महा प्रभु श्री कृष्ण चैतन्य जी ने विचार कर, सुख दाई लीला बिस्तार कर, श्री गंगा तीर जहां केशव भट्ट बैठे थे वहां आ, पास में बैठ, प्रणाम कर नम्रता पूर्वक, बोले कि "आप का यश जगत में छा रहा है, सो मेरे मन में इच्छा है कि आप की, कुछ शास्त्र-संबंधी वार्ता श्रवण करूं" ॥

(४०९) टीका। कवित्त (८४२—४०९=४३३)

"लरिकान संग पढ़ौ, बातैं बड़ी बड़ी गढ़ौ, अै पै रढ़ौ कहौं सोई, सीलता पै रीझियै"। "गंगा कौ सरूप कहौ;" "चाहौ दृग आगे सोई," नये सौ श्लोक किये, सुनि मति भीजियै ॥ तामैं, एक कंठ करि, पढ़ि कै सुनायो "अहो बड़ो अभिलाष, याकी व्यख्या करि दीजियै"। अचरज भारी भयौ, कैसे तुम सीखि लयो ?" "दयौ लै प्रभाव तुम्है, ताने दयौ जीजीयै ॥ ३३४ ॥

(६२९—३३४ = २९५)

वार्त्तिक तिलक।

श्री कृष्ण चैतन्य जी का वचन सुन, केशवभट्ट जी बोले कि "बालकों के संग तो पढ़ते हो, परंतु बातें बड़ी बड़ी गढ़ते हो; अस्तु जो कहो सो हम कहें, क्योंकि तुम्हारी शीलता पर हम प्रसन्न हैं"। आप बोले कि "श्री गंगा जी का स्वरूप कहिये"। केशव बोले कि "जो नेत्रों से देखते हो सोई गंगा जी का स्वरूप है"॥ महाप्रभु ने कहा "नये श्लोक बनाइये"।

तब भट्ट जी ने १०० श्लोक बना के सुनाये। महाप्रभु जी ने सुन, प्रसन्न हो, उस में का एक श्लोक सुना कर कहा कि "इस का अर्थ कहिये, मुझे सुनने की बड़ी अभिलाषा है"। भट्ट जी ने आश्चर्ययुक्त हो पूछा कि "तुम ने कैसे सीख लिया?" श्री महाप्रभु जी ने उत्तर दिया कि जिस ने आप को बनाने का प्रभाव दिया उसी ने हम को सिखा दिया"।

(४१०) टीका। कवित्त (८४२-४१०=४३२)

"दूषन औ भूषन हूं कीजिये बखान याके, सुनि दुष मानि, कही "दोष कहां पाइये"। "कविता प्रबंध मध्य रहे षोटि गंध अहो! आज्ञा मो को देउ," कह्यो "कहि के सुनाइये"॥ व्याख्या करि दई नई, औगुन सुगुन मई; आये निज धाम "भोर मिले" समुझाइये। सरस्वती ध्यान कियो, आई ततकाल बाल, "बाल पै हरायो, सब जग जितवाइये" ॥३३५॥(६२९—३३५ = २९४)

वार्तिक तिलक।

श्री महाप्रभु जी ने कहा कि "इस के अर्थ, दूषण और भूषण सब कहिये"। दूषण शब्द सुन भट्ट जी दुःख युक्त हो कहने लगे कि मेरी कविता में दूषण कहां? श्री महाप्रभु जी ने कहा "कविता प्रबंध में दोषों की गंधि अवश्य रहती है, मुझ को आज्ञा दीजै तो कह सुनाऊं"। भट्ट जी बोले कि "कहो"। तब श्री महाप्रभु जी ने नवीन चमत्कार युक्त अर्थ, और भूषण तथा दूषण भी सब सुना दिये। भट्ट जी ने कहा कि "अच्छा प्रातः काल हम तुम को समझावैंगे," ऐसा कह, आसन पर आ, एकांत में श्री सरस्वती जी का ध्यान किया। श्री सरस्वती जी आईं; भट्ट जी बोले "हे देवि! सम्पूर्ण जगत से जितवा के, इस बालक से मुझे हरवा दिया?

(४११) टीका। कवित्त (८४२ —४११=४३१)

बोली सरस्वती "मेरे ईस भगवान् वेतौ मान मेरौ कितौ सनमुख बतराईये। भयौ दरसन तुम्है" मन परसन होत, सुनि सुख सोत वानी आये प्रभु पाईये॥ बिनै बहु करी, करि कृपा आप बोले अजू! भक्ति फल लीजे, काहू भूलि न हराइये"। हिये धरि लई, भीर भार छोड़ि दई; पुनि नई यह भई, सुनि दुष्ट मरवाइये ॥ ३३६ ॥ (६२९—३३६ = २९३)

वार्तिक तिलक।

श्री सरस्वती जी बोलीं कि "वे बालक नहीं हैं, ईश्वर भगवत के अवतार हैं। मेरा प्रभाव ऐसा नहीं

है कि उन के सन्मुख वार्ता करूं। जिस प्रभु को मन बानी स्पर्श नहीं कर सकते उन का दरसन तुम को हुआ"। भट्ट जी ने सरस्वती जी की ऐसी सुखमय बानी सुन, महाप्रभु जी के समीप आ, सप्रेम प्रार्थना की; श्री महाप्रभु जी कृपा कर कहने लगे "आप आज से भूल के भी किसी को न हराइये। श्री कृष्ण भक्ति मनुष्य तन का फल है, सो लीजिये"। यह वार्ता सुनतेही भट्ट जी हृदय में धारण कर सब भीड़भाड़ छोड़ केवल भक्ति में आरूढ़ हुए।

पुन: कालांतर में दुष्टों ने मथुरा में नवीन दुष्टता उठाई तब आप ने उन दुष्टों को नाश किया॥

☞ * श्रीकेशव भट्ट के अनुयायियों ने ये चार कवित निकाल दिये हैं।

(४१२) टीका कवित्त। (८४२--४१२=४३०)

आपु काश्मीर* सुनी बसत बिश्रांत तीर तुरक समूह द्वार जंत्र इक धारिये॥ सहज सुभाय कोऊ निकसत आय, ताको पकरत जाय ताकें 'सुन्नत' निहारिये॥ संग लै हजार शिष्य भरे भक्ति रँगमहा आरे वही ठौरबोले नीच पट टारिये॥ क्रोधभरि झारे आय, 'सूबा' पै पुकारे, वेतौ देषि सबै हारे, मारे जल बोरि डारिये॥ ३३७॥ (६२९–३३७=२९७)

वार्तिक तिलक।

श्री केशव भट्ट जी भगवत भक्ति में निरत "कश्मीर" * में बिराजते थे।

* किसी के मत से "कश्मीर" शब्द 'कश्यप पमेरु' से है॥

वहां ही सुना कि "श्री मथुरा विश्रान्त घाट के मुख्य मार्ग के बड़े द्वार पर बहुत से दुष्ट तुर्क लोगों और क़ाज़ी ने एक ऐसा यंत्र बांधा है कि जो कोई आर्य्य (हिन्दू) उस के नीचे से निकलता है उस की 'सुन्नत' हो जाती है (अर्थात् अधो इन्द्री की त्वचा कट जाती है), तब उस को बहुत से यमन पकड़ वस्त्र छोड़, दिखा के कहते हैं कि देखो तुम तो 'मुसल्मान्' हो; और, उसको बलात्कार अपनी जाति में मिला लेते हैं"। तब एक सहस्र शिष्य संग में लिये, श्री भक्ति के रंग में भरे, अनुष्ठानादिक से श्री सुदर्शन चक्र जी का प्रभाव सिद्ध किये, आकर उसी "विश्रांत घाट" के मार्ग में बरवटों के उस यंत्र का प्रभाव नष्ट कर, उसी के नीचे से निकले। देख कर बहुत से यमन दौड़ कर कहने लगे कि "देखिये! अपना वस्त्र उघार कर आप मुसलमान हैं"। श्री भट्ट जी ने शिष्यों को आज्ञा देकर सब दुष्टों को ताड़ना कराया। भाग के सब दुष्ट, जो उन का सहायक सूबा* था, उस से कहा; उस ने बहुत सी सेना (फ़ौज) दी। भट्ट जी ने श्री सुदर्शन चक्र जी को स्मरण किया, उसी क्षण सब की देह में आग लग गई, और शिष्य लोगों ने भी दुष्टों को युद्ध कर मारा। बहुतों को श्री यमुना जी में डुबा दिया। तब बचे हुए, 'क़ाज़ी और सूबा' चरणों पर पड़े, त्राहि त्राहि पुकार किया।

* "सूबा" صوبه =एक सूबे का शासक।

आप ने दुष्टता न करने की सपथ करा कर सब के छोड़ दिया। उन का यंत्र मंत्र आदिक सब तोड़ फाड़ जल में डुबा कर नब, जिन को 'मुसल्मान, बना लिया था, उन सबों को अपने प्रभाव से हिन्दू का चिन्ह लौटा के, भगवन्नाम स्मरण करने का उपदेश दिया। इस भांति मथुरा जी में निष्कंटक भगवतभक्ति का प्रचार किया॥

(४१३) मूल, छप्पय छन्द। (८४२—४१३=४२९)

श्री भट सुभट प्रगट्यौ अघट रस रसिकन मन मोद घन॥ मधुर भाव संमिलित ललित लीला सुवलित छवि। निरखत हरखत हृदै प्रेम बरसत सु कलित कबि॥ भव निस्तारन हेतु देत दृढ भक्ति सबनि नित। जासु सुजस ससि उदै हरत अति तम भ्रम श्रम चित॥ आनन्द कन्द श्री नन्द सुत श्री वृषभानु सुता भजन। श्री भट सुभट प्रगट्यौ अघट रस रसिकन मन मोद घन॥७६॥(१३७)

वार्तिक तिलक।

श्री भट्ट जी।

श्री "भट्ट" जी, (संसार शत्रु को पराजय करने

में बड़े सुभट) ने, रसिकों के मन में आनन्द देने के लिए आपने ग्रंथ द्वारा मेघ के समान अघटित भक्ति रस को प्रगट कर वर्षा किया। ऐसी काव्य रचना की कि सुन्दर मधुर भाव से मिलित युगल छबि से सुवलित (सु वेष्टित) ललित लीला उस में बर्णित है। जिस जिस को बुद्धि के नेत्रों से देख सुकलित (सुयुक्त) कविजन हर्षित हृदय से प्रेम बरसते हैं। आप अपने सदुपदेश तथा ग्रंथ से भव निस्तार के लिये सबों को नित्य दृढ़ भक्ति देते हैं; जिन श्री भट्ट जी के सुयश रूपी चन्द्रमा ने उदित होकर सुजनों के चित्त का अति अंधकार तथा श्रम, भ्रम हर लिया। आप आनन्द कन्द श्री नन्दनन्दन और श्रीमति वृषभानु नन्दिनी जी के भजन में तत्पर थे, और वही उपदेश आप ने सब को दिया॥

(४१४) मूल छप्पय (८४२-४१४=४२८)

हरि व्यास तेज हरि भजन नवल, देवी को दीक्षा दई॥ षेचर नर की शिष्य, निपट अचरज यह आवैं। विदित बात संसार संत मुख कीरति गावैं॥ वैरागिनि के वृन्द रहत सँग श्याम सनेही॥ ज्यों जोगेश्वर मध्य मनो सोभित बैदेही॥ श्री

भट्ट चरण रज परस तें, सकल सृष्टि जाकों नई ॥ हरि व्यास तेज हरि भजन बल, देवी कों दीक्षा दई ॥७७॥(२१३-७७ = १३६)

वार्तिक तिलक।

श्री हरि व्यास जी

श्री हरि व्यास जी ने अपने हरि भजन के तेज बल से देवी को दीक्षा दिया। आकाश में चलने वाली देवी मनुष्य की शिष्य हुई यह अति आश्चर्य्य की बात है, परन्तु यह बात सब संसार में विदित है, और सत्य वक्ता सन्त जन श्री हरि व्यास जी की कीर्त्ति गान करते हैं। आप की चेली बैष्णवी देवी भी विद्यमान है। आप के साथ में वैराग्य-युक्त तथा श्याम सुन्दर जी के स्नेही संतों के वृन्द सदा रहते थे।

वे संत नव जोगेश्वरों के सरीखे होते थे। उनके मध्य में आप मानों "वैदेही" अर्थात् श्री विदेहराज विराजमान होते थे। श्री गुरु (श्री भट्ट जी) के चरण के रज स्पर्श करने से, श्री हरि व्यास जी को सम्पूर्ण सृष्टि के लोगों ने नमस्कार किया॥

[४१५] टीका। कवित्त [८४२—४१५=४२७]

चटथावल गाँव बाग देखि, अनुराग भयो, लयौ निस नैम करि चाहैं पाक कीजियै। देवी को स्थान, काहू बकरा ले मार्‌यो आनि, देखत गिलानि "इहां

पानी नहिं पीजिये"॥ भूखें निसि भई, भक्ति तेज मिड गई, नई, देह धरि लई आय, लषि मति भीजिये। "करौ जू रसोई" "कौन करै, कछु औरै भोई;" "सोई मोंकों दीजै दान शिष्य करि लीजिये" ॥३३८॥(६२९–३३८=२९१)

वार्तिक तिलक ।

श्री "हरि व्यास जी" संतों को साथ लिये विचरते "चटथावल" नाम ग्राम में आए; एक उत्तम वाटिका देख आप का चित्त प्रसन्न हुआ; वहां उतर के जप पूजन आदिक नित्य नेम कर, सामग्री सवाँर, आपने रसोई करने का बिचार किया। इतने में उसी वाटिका में देवी के स्थान पर किसी ने बकरा मार के देवी को चढ़ाया। यह दुराचार देख कर दयालु संतों को अति ग्लानी हुई। निश्चय किया कि "यहां प्रसाद की तो बात क्या, जल तक भी नहीं पीना चाहिये"।

सब संतों के साथ श्री हरि व्यास जी भूखे ही रह गये। रात्री हो गई श्री हरि भक्तों के अनुताप तेज से देवी पिस गई। तब नवीन देह धारण कर, आय, संतों को देख देवी अति अनुराग युक्त नम्र हो बोली कि "अजी संतो! आप लोग भूखे क्यों पड़े हो? रसोई कीजिये।" आपने उत्तर दिया "कि इस देवी और देवी के भक्तों की हिंसा देख मन में अति ग्लानि व्याप्त हो गई है। अब रसोई कौन करे"। उस ने बिनय किया

कि "वह देवी मैं ही हूँ; मुझे यह दान दीजिये कि मुझे शिष्य कर, रसोई करके, भगवत का भोग लगा प्रसाद पाइये पवाइये" ॥

[४१६] टीका कवित्त । [८४२—४१६=४२६]

करी देवी शिष्य, सुनि, नगर को सटकी, यों पट की लै खाट जाको बड़ो सरदार है। चढ़ी मुख बोलै "हों तौ भई हरि व्यास दासी, जौ न दास होहु तौ पै अभी डारौं मार है" ॥ आये सब भृत्य भये मानौं नये तन लये, गये दुख पाप ताप, किये भव पार है। कोऊ दिन रहे, नाना भोग सुष लहे; एक श्रद्धा कै स्वपच आयौ पायौ भक्ति सार है ॥३३१॥ (६२९–३३९=२९०)

वार्तिक तिलक।

आप ने देवी जी की प्रार्थना सुन उन को शिष्य किया। देवी भगवत मंत्र सुन, नगर को दौड़ी, आके जो उस नगर का मुखिया था, उस को खाट समेत उठा, भूमि पर पटक, छाती पर चढ़ के कहने लगी कि "मैं तो श्री हरि व्यास जी की शिष्य दासी हुई, तुम लोग भी जो उन के शिष्य दास न होगे तो अभी सब को मार डालूंगी।" देवी की आज्ञा सुनके सबके सब आके श्री हरि व्यास जी के शिष्य हुए; मंत्र, माला, तिलक, मुद्रा ग्रहण कर मानों सब को नवीन शरीर प्राप्त हुए। सबों के दुःख, पाप, ताप छूट गये। भगवत भजन कर संसार से पार हुए। श्री हरि व्यास जी वहां कुछ दिन रहे नाना प्रकार के सत्कार भोग सुख प्राप्त हुए।

पश्चात् आपके समीप एक श्वपच (भंगी) बड़ी श्रद्धा से आय त्राहि त्राहि कर साष्टांग भूमि पर गिर पड़ा; आपने उस को भी सब भक्तियों का सार श्री भगवन्नाम उपदेश दिया। वह सप्रेम रट कर भव पार हुआ॥

[४१७] मूल छप्पय। [८४२—४१७=४२५]

अज्ञान ध्वांत अंतहिँ करन, दुतिय दिवाकर अवतर्यो॥ उपदेसे नृपसिंघ, रहत नित आज्ञाकारी। पक्क वृक्ष ज्यों नाय संत पोषक उपकारी॥ बानी "भोला राम" सुहृद सबहिन पर छाया। भक्त चरण रज जाचि, विशद राघो गुण गाया॥ "करम चन्द" "कस्यप" सदन बहुरि आय, मनो बपु धर्यो। अज्ञान ध्वांत अंतहिँ करन, द्वितिय दिवाकर अवतर्यो॥॥७८॥ (२१३—७८ = १३५).

वार्तिक तिलक।

श्री दिवाकर जी।

अपने शिष्य वर्गों के हृदय का अज्ञानरूपी अंधकार को अंत (नाश) करने के लिये श्री "दिवाकर" भक्त जी ने मानों दूसरे दिवाकर (सूर्य्य) अवतार

लिया। आप श्री १०८ अग्रदेव स्वामी जी के शिष्य थे।

सो बड़े बड़े राजसिंहों को उपदेश दिया, वे सब आप के आज्ञाकारी रहते थे। जैसे आम्र आदिक वृक्ष सुफल पक के नव जाते हैं, इसी प्रकार आप अपने फल सम्पत्ति युक्त नमित होकर संतों के उपकारी पोषक हुए। आप "भोला राम भोला राम" इस वचन के सहारे से बाणी बोलते थे। (अथवा भोलाराम बणिक आप के सुहृद 'मित्र' थे)। आप सब जीवों पर कृपारूपी छाया करते थे; और आपने जीवन पर्यन्त श्री राम भक्तों के चरण की रज ग्रहण कर, श्री रघुनन्दन जी के चरणों का विशद गुण गण गान किया। आप के पिता श्री "कर्मचन्द" जी, श्री "कश्यप" जी के समान थे; उन के गृह में फिर मानों शरीर धारण कर श्री दिवाकर (सूर्य्यदेव) जी ने अवतार लिया॥

[४१८] मूल छप्पय [८४२—४१८=४२४]

"बिट्ठलनाथ" ब्रजराज ज्यों, लाल लड़ाय कै सुख लियो॥ राग भोग नित बिबिधि रहत परिचर्य्या ततपर। सेज्या भूषन बसन रचित रचना अपने कर॥ वह गोकुल वह नंदसदन दीच्छित को सोहै। प्रगट बिभौ जहां घोष *

* "घोष"=आभीर पल्ली, अहीरों का पुरवा, गोप ग्राम॥

देषि सुरपति मन मोहै ॥ "बल्लभ" सुत बल भजन के, कलियुग में द्वापर कियो। "बिट्ठलनाथ" ब्रजराज ज्यों, लाल लड़ाय के सुख लियो ॥७९॥ (२१३—७९ = १३४)

वार्तिक तिलक।

श्री बिट्ठलनाथ गुसाईं।

श्री बल्लभाचार्य्य जी के पुत्र श्री बिट्ठलनाथ जी ने, मानसी भावना तथा अर्चा विग्रह और अपने पुत्रों ही में श्री कृष्ण भाव मान के, ब्रजराज श्रीनन्दराय की नाईं, मधुर प्यार लाड़ लड़ाय कर वात्सल्य सुख को लिया। नित्यही विविधि प्रकार के भोग राग, सय्या, भूषन, वस्त्र, आदिक सब अपने हाथों से रचना कर श्री गोपाल लाल को अर्पण करते; परिचर्य्या मे तत्पर रहते थे। जिस प्रकार द्वापर में गोकुल और नन्द जी का घर था, उसी प्रकार आप जो तैलंग ब्राह्मण दीक्षित हैं उन का गृह शोभित होता रहा। जहां गोकुल में आप का गृह है वहां श्री नन्द राय के घोष कहिये आभीर पल्ली का विभव प्रगट है जिस को देख चन्द्र, इन्द्र का भी मन मोहि जाता है। और क्या प्रशंसा की जाय, श्री बल्लभाचार्य जी के पुत्र श्री बिट्ठलनाथ जी ने अपने भजन के बल से कलियुग में द्वापर कर दिया ॥

[४१९] टीका कवित्त। [८४२—४१९=४२३]

कायथ "तिपुर दास" भक्ति सुख रासि भर्‌यौ, कर्‌यौ ऐसो पन सीत दगला पठाइयै। निपट अमोल पट हियें हित जटि आवै तातें अति भावै, नाथ अंग पहिराइयै॥ आयौ कोऊ काल नरपति नैं बिहाल कियौ, भयौ ईश ख्याल नेकु घर में न खाइयै। वही ऋतु आई, सुधि आई आंखि पानी भरि आई, एक द्वाति दीठि आई बेंचि ल्याइयै॥३४०॥ (६२९—३४० = २८९)

वार्तिक तिलक।

श्री त्रिपुरदास जी।

☞ "श्री त्रिपुरदास" जी का नाम यद्यपि श्री नाभा स्वामी जी के मूल में छूट गया, तथापि, "श्री बिट्ठल नाथ" जी के अति प्रिय शिष्य कृपा पात्र होने से, श्री टीकाकार प्रियादास जी ने आप की टीका लिखी है।

श्री त्रिपुरदास जी कायस्थ शेरगढ़-निवासी का हृदय सुख राशि भक्ति से भरा था; उन ने ऐसा प्रेम प्रण किया कि शीत काल में "श्री वल्लभाचार्य जी" के ठाकुर जी को दगला (रुईदार अंगरखा) सदा भेजा करते थे। वह अति बहुमूल्य वस्त्र बड़े प्रेम से गोटा, पट्ठा, लगवा के भेजते थे। श्री गुसाईं जी को अति प्रिय लागता था, इससे अपने ठाकुर श्री गोकुलनाथ जी के अंग में अवश्य पहिराया करते थे।

परिवर्तनशीलता तो विदित ही है, कोई काल ऐसा आ प्राप्त हुआ कि राजा ने सब धन हर के आप को दुःखित कर दिया। कर्मप्रदाता ईश्वर का ऐसा खेल हुआ कि घर में नित्य भोजन भी नहीं होता था।

जब वही शीत ऋतु आई, तब आप को भी वस्त्र भेजने की सुधि आई; और अत्यंत अनुताप से नेत्रों से जल बहने लगा। इतने में एक मसियानी घर में धरी दृष्टि पड़ी; निश्चय किया कि "इसी को बेच के कोई वस्त्र भेज दूं"॥

(४२०) टीका। कबित्त [८४२--४२०=४२२]

बेचि कै बजार यों, रुपैया एक पायौ ताकौ, ल्यायौ मोटौ थान मात्र रंग लाल गाइयै। भींज्यो अनुराग, पुनि नैन जल धार भीज्यौं, भींज्यो दीनताई, धरि राख्यौ और आइयै॥ कोऊ प्रभुजन आय सहज दिखाई दई, भई मन दियौ लै, "भँडारी पकराइयै। काहू दास दासी के न कामकौ; पै, जाउ लैकै, विनती हमारी जू गुसांई न सुनाइयै" ॥३४१॥ (६२९--३४१=२८८)।

"दवात" دوات मसियानी, कज्जलपात्र।

वार्तिक तिलक।

उस कज्जल पात्र को बेचने से १) (एक रुपया) पाया; उस से लाल रंग से भींगा (रँगा) हुआ मोटे वस्त्र का थान मोल लिया। वह वस्त्र त्रिपुर दास जी के अनुराग से भींगा, पुनः उन्हीं के नेत्रजल धार से भी भीं-

गा, फिर आप की दीनता से भी भींगा। उसको लेकर आपने अपने घर रक्खा (आप का गृह "शेरगढ़" में था)।

विचार करते थे कि "श्री वृन्दाबन की ओर से कोई आवेगा तो भेज दूंगा"। इतने ही में श्री गोसाईं जी का कोई जन सहज ही में दीख पड़ा। मन में भया कि "दे देना चाहिये"। उन को देकर बड़ी दीनता से कहने लगे कि "यह श्री गुसाईं जी के भंडारी (कोठारी) के हाथ दे दीजियेगा। यद्यपि यह वस्त्र किसी दासी दास के काम का भी नहीं है तथापि लेजाइये, मेरी ओर से कुछ बिनय प्रार्थना वा, इस वस्त्र का ही समाचार, श्री गुसाईं जी को मत सुनाइयेगा"।

राजिन्दर, जानकीवर-चरण ध्यावो।
सुयश श्रीप्राणपति के नित्य गावो॥

(जानकी प्रपन्न राजेन्द्र शरण, छपरा)

(दोहा) जीते भज्यो न राम ही, मर्यो न सरयू तीर।
बनादास तिन व्यर्थ ही, पायो मनुज शरीर॥१॥
दरस स्वाति सुन्दर जलद, प्यासे चातक नैन।
कबधौं दर्शन पाइहैं! कब लहिहैं सुख चैन॥२॥
हम बासो वहि देश के, जहां जाति कुल नाहिं।
देह मिलन होतो नहीं, वहाँ सु शब्द मिलाहिं॥३॥

(४२१) टीका। कबित्त (८४२-४२१=४२१)

दियौ लै भंडारी कर राखे धरि पट, वापै मिपट सनेही नाथ बोले अकुलाय के। "भये हैं जड़ाये, कोऊ

बेग ही उपाय करौ;" बिबिधि उठाये अंग वसन सुहा-
य कै॥ आज्ञा पुनि दई, यों अंगीठी बारि दई, फेर वही
भई, सुनि रहे अति ही लजाय कै। सेवक बुलाय कही
"कौन की कवाय आई?" सबै सी सुनाई, एक वही
ली वचाय कै॥३४२॥ (६२९—३४२ = २८७)

वार्त्तिक तिलक।

उसने लाके गुसाईं जी के कोठारी के हाथ दे दिया। उस ने उस वस्त्र को बिछा के उसी पर अच्छे अच्छे वस्त्र रख दिये। परन्तु, श्री आत्यंत स्नेही नाथ अति अकुला के गुसाईं श्री बिट्ठल नाथ जी से बोले कि "हम को जाड़ा बहुत लगा है, शीघ्र ही कुछ उपाय करिये" गुसाईं जी ने रूई भरे बहुत से सुन्दर सुन्दर वस्त्र उढ़ाये, प्रभु ने फिरि आज्ञा दी कि "जाड़ा तो नहीं गया"। गुसाईं जी ने अंगीठी बार कर प्रभु के आगे रख दी। फिर प्रभु ने कहा कि "जाड़ा तो नहीं गया"।

सुन के श्री गुसाईं जी लज्जित हो गये कि "अब क्या उपाय करूं"। तब बिचार कर सेवक को बुला पूछा कि किस किस की कवाय (जड़ावर) आई है? वह (कोठरी) एक त्रिपुर दास जी का नाम छोड़ और सब के नाम एक एक कर कह गया॥

(४२२) टीका कवित्त। (८४२—४२२=४२०)

सुनी न "तिपुर दास"! बोल्यौ "धन नास भयौ,
मोटौ एक थान आयौ राख्यौ है बिछाय कै"॥ "ल्यावौ

वेगि याही छिन" मन को प्रबीन जानि, ल्यायो दुख मानि, ब्यौंति लई सों सिंवाय के॥ अंग पहिराई सुख दाई, का पै गाई जाति, कही तब बात "जाड़ो गयौ भरि भाय कै"। नेह सरसाई, ले दिखाई, उर आई सबै ऐसी रसिकाई हृदै राखी है बसाय कै॥३४३॥ (६२९—३४३ = २८६)

वार्तिक तिलक।

गुसाईं जी ने कहा "त्रिपुर दास के जड़ावल का नाम तो नहीं सुना"? उस ने कहा कि "उन का सब धन नाश हो गया! एक बहुत मुटिये वस्त्र का थान भेजा है, उसको मैं ने वस्त्रों के नीचे विछा रक्खा है"। श्री गुसाईं जी ने सुनते ही कहा कि वह वस्त्र इसी क्षण ला। प्रभु प्रवीण ने उन के मन की प्रीति जान ली॥ वह खिमन हो के लाया, श्री गुसाईं जी ने अति शीघ्र ही, सीने वालों को बुलाय ब्योंताय, सिला के, प्रभु के श्री अंग में पहिनाया, प्रभु को वह अत्यंत सुखदाई हुआ॥ प्रभुने अकथनीय सुख पाके कहा "अब हमारा जाड़ा गया" (प्रेम के भूखे सांवलिया) देखिये भक्त के स्नेह की सरसता प्रभु ने दिखाई। यह सब के हृदय में निश्चय हुआ कि श्री नाथ ने इस प्रकार की रसिकाई अपने हृदय में बसा रक्खी है॥

श्रीत्रिपुर जी की जय॥

	सत्ययुग त्रेता श्रौर द्वापर	कलि	यहां तक
मूल दोहे } श्री नाभा स्वामी जी	४	१	५
मूल छप्पय }	२३	५१	७४
जोड़ (मूल २१३ में से)	२७	५२	७९
टीका कबित्त श्री प्रियादास जी	१०५	२३८	३४३
जोड़ (२१३+६२९=८४२ में से)	१३२	२९०	४२२
पृष्ठ	३७४	४६२	८३६
भक्त	२७५	१३७	४१२

श्रीअयोध्या जी प्रमोदवन । श्रीजानकी नौमी १९६४

(S. R. S B. P.)

श्री सीताराम

श्री हनुमते नमः

मूल भक्तमाल	२१३—७९=१३४	
टीका कबित्त	६२९—३४३=२८६	
जोड़	८४२—४२२=४२०	

पृष्ठ ८३६

1907. १९६४

शुभम् ॥



प्रमोदबन, श्रीअयोध्याजी, श्रीजानकी नौमी १९६४

(S. R. S B. P)

(इति चौथा भाग)

☞ पांचवां भाग छप रहा है ॥



श्रीगणेशाय नमः

॥ श्रीगुरुचरणारविन्देभ्यो नमोनमः ॥

श्रीमतेनारदाय नमः । श्रीमतेरामानुजाय नमः । श्रीमतेरामानन्दाय नमः ।

नमोनमो ब्राह्मणेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमोनमः

श्री सीतारामाभ्यान्नमः

श्रीहनुमते नमः

श्रीसीतारामभक्तेभ्यो नमः

श्रीअयोध्यासरयूभ्यां नमः । श्रीअयोध्यामिथिलाभ्यां नमः । श्रीउमागौरीगिरिजाभवानीअन्नपूर्णादेव्यै नमः । श्री शारदासरस्वतीदेव्यै नमः । श्री श्रीभक्तिदेव्यै नमः । श्रीतुलसीदेव्यै नमः । श्री श्रीकृपादेव्यै नमः । श्रीचारुशीलादेव्यै नम । श्रीचन्द्रकलादेव्यै नमः । श्रीनृत्यकलायै नमः । श्रीहंसकलायै नमः । श्रीश्यामनायकायै नमः ॥

बिनवौं लखन सीय रघुनायक । जिनके हनूमान अस पायक

महाबीर बिनवौं हनुमाना । राम जासु यश आपु बखाना ॥

श्रीयुगल सर्कार ! तुम्हारी और तुम्हारे प्यारे प्यारियों की जय । तुम्हारी कृपासे आज फिर श्रीभक्तमाल का तिलक तुम्हें सुनाता और निवेदन करता हूं ॥

(४२३) मूल छप्पय । (८४२—४२३=४१९)

श्री बिट्ठलेस-सुत सुहृद श्री गोबरधन धर

ध्याइये ॥ श्री गिरधर[१] जू सरससील, गोबिन्द[२] जु साथहि । बालकृष्ण[३] जसबीर, धीर, श्री गोकुल नाथ[४] हि ॥ श्री रघुनाथ[५] जु महाराज, श्री जदुनाथहि[६] भजि । श्री घनश्याम[७] जु, पगे प्रभु अनुरागी सुधि सजि ॥ ए सात, प्रगट बिभु, भजन जग तारन तस जस गाइये । श्री बिट्ठलेस-सुत सुहृद श्री गोबरधन धर ध्याइये ॥ ८० ॥ (२१३-८० = १३३)

वार्त्तिक तिलक ।

४८ वें छप्पय, कवित १८७, पृष्ठ ५६७ में, श्रीबल्लभाचार्य्यजी की कथा लिखी जाचुकी है जो सम्वत १५७७ के लगभग हुए। आपही के पुत्र श्री बिट्ठलेश (बिट्ठलनाथ) जी हैं जिनकी कथा मूल ७९, पृष्ठ ८२९ में वर्णित है ।

श्री बिट्ठलनाथ जी का वात्सल्यभाव रहा। सो श्रीकृष्ण भगवान् ने आप की भक्तिवश कृपा करके बिचारा कि "नन्द बाबा की जगह तो श्री बिट्ठल गुसाईं जी हैं; पर माता जसोदा जी के स्थान में भी एक चाहिये;" इसलिये आप से स्वीकार करने के अर्थ स्वप्न में कहकर, एक ब्राह्मण की सुन्दर गुणवती कन्या से विवाह करवा दिया। दम्पति से श्रीकृष्णभगवान् के अंश बिभु सात

बटे क्रमशः हुए; अर्थात्, प्रथम पुत्र में पांच वर्ष पर्य्यन्त, पुनः छठे वर्ष से दशवें वर्ष तक द्वितीय पुत्र में, फिर पन्द्रवें वर्ष तक तृतीय में, बीसवें तक चतुर्थ में, पचीसवें तक पंचम में, तीसवें तक षष्ठ में, तथा ३५ (पैंतीसवें) वर्ष पर्य्यन्त सातवें पुत्र में, भगवान् का विभु रहा और इस प्रकार से ३५ वर्ष तक लगातार क्रमशः प्रत्येक में, और उसके पश्चात अर्चावतार में, स्वयं भगवतने आप इनके पुत्र होने का सुख श्री बिट्ठलनाथ जी को दिया। आपके भाग्य तथा भगवतकृपा की प्रशंसा कहां तक की जासके, और उन सात की सराहना किस से हो सकै कि जो पांच पांच वर्ष तक भगवत-विभु, और तिस पीछे श्रीवल्लभाचार्य्य सम्प्रदाय के भूषण रहे।

एक समय आपके एक पुत्र बन्दर देख डरकर भागे और आप के गोद में आ लपटे; आप भगवत ऐश्वर्य्य के ज्ञान में उस समय कह पड़े कि एक बन्दर मात्र से तुम इतना डरते हो! तो किष्किन्धा लंका में बन्दरों की सेना के मध्य कैसे रहे?" हरि ने उत्तर दिया कि "हम भाव ग्राही भावप्रिय हैं, नहीं तो गुणातीत हैं ही; तुमको यदि ऐश्वर्य्य ही की वार्त्ता है तो माधुर्य्य उपासना क्यों?"

"श्री "बिट्ठलेश"-सुत अर्थात् श्री गोसाईं बिट्ठलनाथ जी के सातो पुत्र, सुहृद साक्षात् श्री गोवर्द्धनधर (श्रीकृष्णचन्द्र) को ध्यान धरना और उनके यश गाना चाहिये ये। सातो सरसशील, यशवीर, धीर, श्री प्रभु के अनु-

राग में पगे, विवेकी, प्रभु के प्रगट विभूति रूप, हरि भजन प्रवीण, और जगतारण हुए ।

(१) श्रीगिरिधर जू;
(२) श्रीगोबिन्द जू;
(३) श्रीबालकृष्ण जू;
(४) श्रीगोकुलनाथ जू;
(५) "श्रीरघुनाथ जी महाराज";
(६) श्रीयदुनाथ जू;
(७) श्रीघनश्याम जू ॥

☞ श्रीकबीर जी (पृष्ठ ७१९) सम्वत १५४९ में मगहर गए। वहाँ से सम्बत १५५२ के अगहन सुदी एकादशी को परमधाम पहुंचे ।

(दो०) "पन्द्रह सौ उन्चास में, मगहर कीन्हों गौन ।
अगहन सुदी एकादशी, मिले पौन सों पौन" ॥ १ ॥

पर, विलसन साहिब् (H. H. WILSON Esqr.) ने १४४८ ईस्वी (१५०५ विक्रमी) लिखा है ।

श्री सूरजी [पृष्ठ ८१३] ने अकबर, जहांगीर, शाहेजहां, तीनों के समय देखे थे । आपका समय प्रायः सम्बत १६१७ से १६९० तक के लगभग कहा जाता है ।

("ललिता! तोहि बूझत शाहेजहां। ऊधव! तजि श्याम, तुम आए कहां?")
("बाल्मीक तुलसी भए, ऊधव सूर शरीर")

(अकबर बादशाह सम्बत १६६२ तक, जहांगीर १६८४ तक, और १६८४ से शाहेजहां था ।) जैसा कि गोस्वामी श्री १०८ तुलसीदास जी ने भी कई बादशाहों के समय देखे थे; यह बात प्रसिद्ध ही है कि आप का समय १५८३ से १६८० तक रहा ॥

(दोहा) "पढ्यों गुरू सन बीच शर (५), सन्त बीच मन (४०) जान ।
गौरी शिव हनुमत कृपा, तब मैं रची चिरान (श्रीरामचारित मानस) ॥ १ ॥
गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ॥

[४२४] मूल छप्पय [८४२—४२४=४१८]

गिरिधरन रीझि कृष्ण दास कौं नाम माँझ साझौ दियौ ॥ श्री बल्लभ गुरुदत्त भजन सागर गुन-आगर। कबित नोख निर्दोष नाथ सेवा में नागर ॥ बानी बंदित बिदुष सुजस गोपाल अलंकृत। ब्रज रज अति आराध्य, वहै धारी, सर्बसु चित ॥ सानिध्य सदा हरि दास वर्य्य, गौर श्याम दृढ़ ब्रत लियो। गिरिधरन रीझि कृष्णदास कौं नाम माँझ साझौ दियो ॥ ८१ ॥
(२१३—८१=१३२)

* श्री बिट्ठलनाथ गुसाईं के सातो लड़कों की सात गादियां बहुत बड़ी बड़ी हैं; सातों में भगवत मूर्तियाँ विराजमान थीं। उन में से, [आलमगीर औरंज़ेबू के समय, विक्रमी सम्बत् १७१४। १७६४ के मध्य,] एक मूर्ति को उदयपुर के राना और दूसरे स्थान की मूर्ति को जयपूर के महाराज अपने अपने यहां लेगए ॥

वार्तिक तिलक।

श्रीबालकृष्ण (कृष्णदास) जी।

गिरिधारी श्रीकृष्णचन्द्र ने श्रीकृष्णदास जी पर रीझ के अपने नाम में साझी किया अर्थात आपका नाम भी "कृष्ण" (बाल कृष्ण वा कृष्णदास) रखवाया और

आपके नाम का पद बनाया। आप गुरु श्रीवल्लभाचार्य्य सम्प्रदाय के अनुसार जो भजन की रीति, तिसमें पूरे और गुणागार हुए। आपकी कविता निर्दूषण तथा अनूखी हुआ करती थी। आप छठेही वर्ष से भगवत सेवा में प्रवीण हुए। आपकी वाणी को पण्डित लोग आदरते और वन्दना करते थे। कि जो अलंकृत तथा श्री गोपाल जी के सुयश से भूषित होती थी। आप श्रीव्रज की रज की आराधना बहुतही किया करते थे, और उसको धारण भी। आप सर्बो से सुचिन्तित थे अथवा सब प्रकार से निश्चित रह भगवत चिन्ताही में लगे रहते थे, और सर्वदा महात्मा सन्तों के संग में रहा करते थे।

श्रीराधाकृष्ण भजन का एक मात्र दृढ़ व्रत आप को था।

(४२५) टीका। कवित्त (८४२—४२५=४१७)

प्रेम रसरास कृष्णदास जू प्रकास कियौ, लियौ नाथ मानि सों प्रमान जग गाइयै। दिल्ली के बजार में ज-लेबी सो निहारि नैन, भोग लै लगाई, लगी विद्यमान-पाइयै॥ राग सुनि भक्तिनीकौ, भए अनुराग बस, ससि मुख लाल जू कों जाय कै सुनाइयै। देखिरिझवार रीझि निकट बुलाइ लई, लई संग चले, जग लाज को बहाइयै ॥ ३४४ ॥ (६२९ = ३४४ = २८५)

वार्तिक तिलक।

श्री बालकृष्ण जी ने प्रेम रस की राशि प्रकाश की

और आपके ठाकुर " श्री नाथ जी " ने आपकी निष्ठा प्रेम से अति प्रसन्न भी हुए सो यह बात जग में प्रसिद्ध है; " प्रेमरसराशि " नाम एक ग्रन्थ भी बनाया। उसको प्रभु ने अंगीकार किया ।

एक समय आप कुछ वस्तु लेने दिल्ली गए; वहां एक मिठाईवाले के हां उत्तम जिलाबियां कड़ाही से निकलती देख, उन जिलाबियों को " श्रीनाथ जी " को (मानसी) भोग लगाया । प्रेम के ग्राहक श्रीठाकुर जी ने स्वीकार कर लिया । यहां मन्दिर में थार उतारने के समय जिलाबियों का थार भी पाया गया ।

आगे चल कर एक बारमुखी के राग सुनकर आपने अनुरागावेश में उससे पूछा कि " हे चन्द्रमुखी भक्तिन ! मेरा ससिमुख लाला राग का बड़ा रसिक है, तुम उसको राग गान सुनाने के लिये मेरे साथ चलोगी ? " उसने रिझवार समझ कहा कि " हां, चलूंगी " ।

आप, लोक की लज्जा छोड़, उस बारमुखी को अपने साथ लाए।

[४२६] टीका कवित्त । [८४२—४२६ = ४१६]

नीके अन्हवाय, पट आभरन पहिराय, सोंधौ हूं लगाय, हरि-मन्दिर में ल्याये हैं । देखि भई मतवारी, कीनी लै अलापचारी, कह्यो " लाल देखें ? " बोली " देखे, मेंही भाये हैं " ॥ नृत्य, गान, तान भाव भरि मुसिक्यान, दृग रूप लपटान, नाथ निपट रिझाये हैं । ह्वैके तदाकार, तन छूट्यौ अंगीकार करी, धरी उर प्रीति, मन सब के भिजाये

हैं ॥ ३४५ ॥ (६२९—३४५ = २८४)

वार्तिक तिलक।

उस बारमुखी को व्रज में ला, भली भांति स्नान करवा, बसन भूषण पहिरा, शृङ्गार करा, सुगन्ध लगा, उसे "श्रीनाथ" जी के मन्दिर में लाकर ठाकुर जी के सामने खड़ी कर, आज्ञा की कि "मनुष्यों को बहुत रिझाया; अब तेरा भाग्य चमका हमारे लाल जी को रिझा"। वह हरि के दर्शन पा मतवाली हो नाचने गाने लगी। आपने पूछा "मेरे लला को तूने देखा?" उसने उत्तर दिया कि "केवल देखाही नहीं बरन इनकी सौन्दर्य्य पर अपना तनमन भी वार चुकी।"

उसने गाया, नाचा भाव बताया, अपनी सब कलाएं प्रगट कर भगवत को अतिशय रिझा लिया। तदाकार हो गई; सब को प्रेम रङ्ग में भिगा दिया; शरीर उसी देशा में छाड़ कर परम-पद को पहुंच गई ॥

(४२७) टीका। कवित्त (८४२–४२७ = ४१५)

आए, सूर सागर सो कही "बड़े नागर हौ, कोऊ पद गावौ, मेरी छाया न मिलाइयै"। गाये पाँच सात, सुनि जान मुसिकात, कही भलें जू प्रभात आनि करिकै सुनाइयै ॥ पर्‍यौ सोच भारी, गिरिधारी उर धारी बात, सुन्दर बनाय, सेज धर्‍यौं यों लखाइयै। आयकै सुनाया, सुख पायौ, पच्छ पात लै बतायौ, हूंमनायौ रङ्ग छायौ, अभू गाइयै ॥ ३४६ ॥(६२९–३४६ = २८३)

वार्तिक तिलक।

श्रीसूर जी से मिले, श्रीसूर जी ने आप से कहा कि "भाई! तुम बड़े चतुर हो, एक पद बनाके सुनाओ पर उसमें मेरे किसी पद की छाया न पाई जावे" आपने पांचसात पद सुनाए; पर सूर जी ने मुस्क्याके बताया कि इन में मेरे अमुक पद की छाया है। निदान यह ठहरी कि आज रहे, कल नया पद सुनाया जावै। आपको बड़े सोच में देख श्रीगिरिवरधारी जी ने मन में विचार एक सुन्दर पद * बनाके आपके आसन पर रख दिया जिस्को देख आप बड़े प्रसन्न हुए। आपने जाकर श्रीसूर जी को सुनाया। श्रीसूर जी ने अति सुख पाकर कहा कि "आपके ठाकुर ने अपने बाबा का (आपका) पक्षपात कर आपके निमित्त स्वयं बना दिया है।" दोनों मूर्ति भगवत कृपा के रङ्ग में पग गए। अब तक वह पद गाए जाते हैं।

* कहते हैं कि उस पद का प्रथम तुक यह है:—

"आवत बने कान्ह गोप बालक सँग बच्छ की खुर रेणु छुरित अलकावली।"

(४२८) टीका। कवित्त (८४२–४२८=४१४)

कुवां में खिसिलि, देह छूटि गई, नई भई, भई यों असंका कछू और उर आई है। रसिकन मन दुख जानि, सो सुजान नाथ दिया दरसाय, तन ग्वाल सुख दाई है॥ गोवर्द्धन तीर कही "आगे बलबीर गये श्री गुसांई धीर सों प्रनाम," यों जनाई है। धनहू बतायो, खोदि पायो, विशवास आयो,

हियें सुख छायौ, सेक पंक लै बहाई है ॥ ३४७ ॥ (६२९ -३४७ = २८२)

वार्तिक तिलक ।

फिसल के कुआं में गिर पड़े; शरीर छूट गया; दिव्य नवीन देह पाई । लोगों ने अकालमृत्यु की आशंका की। रसिक जनों के मन में दुःख हुआ । सो जानकर श्रीनाथ सुजान शिरोमणि ने दिखा दिया कि आप दिव्य ग्वाल शरीर धरे गोबर्द्धन पर्वत की जड़ में यह कहते चले जा रहे हैं कि " बलवीर आगे गए हैं उनके पीछे जाता हूं; गुशाईं जी से मेरा प्रणाम कह देना । और अमुक ठिकाने इतना धन है साधुसेवा में लगा देवें । " खोदा गया तो वह द्रव्य मिला, सब को बिश्वास आया, शंका रूपी पंक धुल गया सब का मन प्रसन्न हुआ ।

श्री गोकुलनाथ जी ।

गुशाईं गोकुलनाथ जी (श्री १०८ वल्लभाचार्य्य जी के पोते, श्री बिट्ठलनाथ के पुत्र) के पास एक धनीने लाखों रुपए भेंट देने के लिये लाकर विनय किया कि " मुझे शिष्य कीजिये " । आपने उससे पूछा कि " किसी वस्तु में तुम्हारी विशेष प्रीति आशक्ति है ? " उसने उत्तर दिया कि " किसी में नहीं " । आपने कहा कि " जब तुममें प्रीति का बीज ही नहीं तो मैं तुम्हें शिष्य नहीं कर सकता; यदि किसी में प्रेम होता तो उसे मोड़कर श्री शोभाधाम के चरणों

में लगा दिया जाता।"

"कान्हा" नाम एक भंगी मन्दिर के बाहर झाड़ू लगाया करता और सामने से "श्रीनाथ" जी का दर्शन कर प्रेम में मग्न हुआ करता था।

सब की दृष्टि बालक (ठाकुर जी) पर न पड़े, इसलिये आपने एक भीत (दीवार) खिंचवादी। दर्शन न पाने से कान्हा बिकल हुआ। श्रीठाकुरजी ने उसे तीन रात बराबर स्वप्न में आज्ञा की कि "गोकुलनाथ से कह कि यह भीत गिरवा दें"। कान्हा आपसे तो विनय नहीं कर सके पर किसी से कह दिया। तब गोसाईं जी ने उस्से पूछा; उनने सब वार्ता कही। आप प्रेम में डूबे, कान्हा को कृपापात्र जान हृदय से लगा लिया और नई भीत गिरवादी क्योंकि उस्से स्वप्न का प्रमाण मिला। प्रेम की ग्राहकता की जय, प्रेमियों की जय।

"कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानौं एक प्रेम कौ नाता"

श्रीबर्द्धमान, श्री गंगल जी।

(४२९) मूल छप्पय। (८४२-४२९=४१३)

"वर्द्धमान," "गंगल" गंभीर, उभै थंभ हरि भक्ति के॥ श्री भागौत वषानि, अमृत मै नदी बहाई। अमल करी सब अवनि, ताप हारक सुष दाई॥ भक्तन सों अनुराग दीन सो परम दयाकर। भजन जसोदानंद संतसंघट के आगर॥

भीषमभट्ट अंगज उदार, कलियुग दाता सुगति के॥
वर्द्धमान, गंगल गंभीर, उभै थंभ, हरि भक्ति के ॥८२॥
(२१३-८२ = १३१)

वार्तिक तिलक ।

(१) श्री बर्द्धमान जी । (२) श्री गंगल जी
(३) श्री भीष्मभट्ट जी ।

श्री बर्द्धमान जी और श्री गंगल जी, दोनों भाई "श्री भीष्मभट्ट" जी के पुत्र बड़े गम्भीर, उदार, त्रिताप हरने वाले, सुख देनेहार, बड़े दीनदयाल, भगवतभक्ति के दो खम्भे, कलि के जीवों के सद्गति के देनेवाले हुए; श्री मद्भगवत की कथा कहने में मानो अमृत की नदी बहाते थे; संसार भर में आप दोनों का यश विदित था; हरिभक्तों से बड़ा अनुराग रखते थे; सन्तसमूह में अग्र अथवा संतों के संग में आगर और श्री यशोदानन्दन जी के भजन में निपुण थे ।

(४३०) मूल छप्पय । (८४२-४३० = ४१२)

"रामदास" परतापतें, "षेम गुसाईं" षेमकर॥ रघुनन्दन को दास, प्रगट भूमंडल जानै । सर्वस सीताराम और कछु उर नहिं आनै ॥ धनुष बान सों प्रीति, स्वामि के आयुध प्यारे । निकट निरंतर रहत होत कबहूं नहिं न्यारे ॥ सूरबीर

हनुमत सदृश, परम उपासक प्रेम भर। "राम-
दास" परतापतें, "षेम गुसाईं" षेमकर॥ ८३॥
(२१३-८३=१३०)

वार्तिक तिलक।

श्रीक्षेम गुसाईं जी।

गुरु महाराज श्रीरामदास जी के प्रताप से, श्रीक्षेम गुशाईं जी कल्याण करनेवाले हुए। जगतभर में यह विख्यात है कि आप श्रीरघुनन्दन जी के परम भक्त थे, कुछ भी हृदय में नहीं लाते थे, केवल श्रीसीताराम जी को अपना सर्वस जानते थे; स्वामी के आयुध धनुष बाण आपको अति प्रिय थे, धनुषबाण से अतिशय प्रेम रखते थे। आपका मन श्रीयुगलसरकार से अलग नहीं होता, सदैव श्री चरणों ही में रहता था। श्रीमारुति जी की छाया सूर बीर, अनन्य उपासक और परम प्रेमी थे॥

(४११) मूल। छप्पय। (८४२—४३१=४११)

विट्ठलदास माथुर मुकुट भयो अमानी मानदा॥
तिलक दाम सों प्रीति, गुनहिं गुन अंतर धारयो।
भक्तन को उतकर्ष जनम भरि रसन उचारयो॥
सरल हृदै, संतोष जहां तहां, पर उपकारी।
उत्सव में सुत दान कियो कर्म दुसकर भारी॥
हरि गोविन्द जै जै गोविन्द गिरा सदा आनंददा॥

"विट्ठलदास" माथुर मुकुट भयो अमानी मानदा ॥ ८४ ॥ (२१३-८४=१२९)

वार्तिक तिलक ।

श्रीविट्ठलदास जी ।

श्रीविट्ठलदास जी उत्तम माथुर चौबे ब्राह्मण थे 'सब-हिमान प्रद आपु अमानी'। आपको तिलक (ऊर्द्धपुण्ड) और कण्ठीमाला से बड़ी प्रीति थी । गुण ही गुण को (अवगुण को नहीं) उर में रखते थे । सन्तों भक्तों की बड़ाई जन्म भर आपकी जिह्वा पर रही । सरलहृदय, सन्तोष शील, और परहितरत थे , ऐसा भारी दुष्कर कर्म किया कि उत्सव में पुत्र को भगवत के न्यवछावर करके दान कर दिया । सदा "गोविन्द" नाम ऐसे प्रेम से उच्चारण किया करते थे कि सबको आनन्दमग्न करदेते थे ॥

(४३२) टीका । कवित्त । (८४२-४३२=४१०)

भाई उभै माथुर, सुराना के पुरोहित हे, लरि मरे आपस में, जियो एक जाम है । ताको सुत विट्ठल सु दास, सुख रासि हिये लिये, वैस थोरी भयो बड़ो सेवे स्याम है ॥ बोल्यौ नृप सभा मध्य, "आवत न विप्र सुत, छिप्र लैकै आवो" कही, कह्यो "पूजे काम है"। फेरि कै बुलायो, "करौं जागरन याही ठौर," काहू समझायो गावै नाचै प्रेम धाम है ॥ ३४८ ॥ (६२९-३४८=२८१)

वार्तिक तिलक ।

"श्रीबिट्ठलदास जी" के पिता और चचा उत्तम माथुर चौबे ब्राह्मण, और राना के पुरोहित थे; दोनों भाई आपस में लड़ कर पहर भर में मर गए। बिट्ठल जी उस समय थोड़े ही वैस के थे; पर लड़कपन ही से आप सुख राशि श्याम को अपने हृदय में रखते थे। राना के पास जाने आने की आवश्यकता नहीं समझते थे। एक दिन राना ने सभा में पूछा कि "वह विप्रसुत आता नहीं है! क्या बात है?" दुर्जनों ने कहा कि "वह अपने तईं लोभ रहित हरिदास अनुमान करता है"। राना ने शीघ्र बुला भेजा; आपने उत्तर दिया कि "श्रीहरिगोविन्द कृपा से राना के प्रताप से मेरी कामना पूर्ण है राना जी को कष्ट क्यों दूं"। किसी ने कहा कि "वह नाचनेगाने में ही वैरागियों के साथ अपने घर अपना दिन बिताता है।" पुनः राना ने आपको कहला भेजा कि "आज रात को हरिकीर्त्तन जागरन हमारेही हां हो"।

(४३३) टीका। कवित्त (८४२-४३३=४०९)

गये संग साधुनि लै, विनै रंग रंगे सब, राना उठि आदर दै, नीके पधराये हैं। किये जा बिछौना तीनि छात्तिन के ऊपर लै, नाचि गाय आये प्रेम गिरे नीचें आये हैं॥ राजा मुख भयो सेत, दुष्टनि कों गारी देत, संत भरि अंक लेत, घर मधि ल्याये हैं। भूप बहु भेंट करी, देह बाही

भांति परी, पाछे सुधि भई, दिना तीसरे जगाये हैं ॥ ३४९ ॥
(१२९-३४९ = २८०)

वार्तिक तिलक ।

आप साधुओं को साथ लेकर पहुँचे: सब के सब विनय प्रेम में रँगे थे, और श्रीविट्ठल जी के प्रेम का कहना ही क्या । राना ने उठकर समाज का आदर सम्मान किया । कई दुर्जनों के कहने से जागरन के लिये बिछावन तिखने की छतपर कराया गया था । समाज को वहीं पधराया । श्रीबिट्ठल जी भगवत यश नाम के कीर्त्तन में प्रेम से ऐसे बेसुध हुए कि तिखने पर से नीचे धम से गिर पड़े । राना का जी उड़ गया, बहुतही डरा, उन दुष्टों पर क्रोध करके दुर्वचन सुनाए । साधुओं ने आपको गोद में उठालिया, घर लाए । श्री भक्त रक्षक भगवान की कृपा से आपको चोट का तनक नाम तक नहीं पहुँचा । शरीर वैसाही पड़ा रहा, तीसरे दिन सुध बुध आया आप जागे । राना ने अपराध क्षमा कराया, बहुत कुछ भेंट पूजा भेजी ॥

(४३४) टीका । कवित्त (८४२-४३४ = ४०८)

उठे जब, माय नै जनाय सब बात कही, सही नहीं जात निसि निकसे विचार कै । आये यों "छटीकरा" मैं, गरुड़ गोविन्द सेवा, करत मगन हियें रहत निहारि कै ॥ राजा के जे लोग सु तो ढूढि कारि रहे बैठि, तिया मात आई करै रुदन पुकारि कै । किये लै उपाय, रही कितौ

हाहा खाय, ये तौ रहे मँडराय, तब बसी मन हारि कै ॥ ३५० ॥ (६२९-३५० = २७९)

वार्तिक तिलक।

जब श्रीबिट्ठल जी की मूर्छा गई तो आप की माताजी ने राना की परीक्षा की सब बात कह सुनाई। आप रात के समय अपने घर से चलदिये "छठीकारा" ग्राम में आए जहां श्रीयशोदा जी ने भगवान् की छठी की थी। वहां श्री "गरुड़गोविन्द" जी की सेवा पूजा में तत्पर हुए; प्रभु की छबि देख देख मग्न रहा करते थे। राना के नोकरों ने लाख ढूंढा, कहीं नहीं पाया। पर आपकी स्त्री तथा माता को आप मिले; त्रिया और माता चिल्ला चिल्ला कर रोने लगीं; घर चलने के लिये बहुत कुछ कहा पर आप ने एक न सुनी; वहीं जमे रहगए। तब हारकर आपकी स्त्री और माता भी वहीं रहीं ॥

(४३५) टीका। कवित्त (८४२-४३५ = ४०७)

देष्यो जब कष्ट तन, प्रभू जू स्वपन दियौ "जावो मधुपुरी" ऐसे तीन बार भाषियै। आये जहां जाति पांति छाये कछु औरै रंग; देष्यौ एक षाती, साधु संग अभिलाषियै ॥ तिया रहै गर्भवती सती मति सोच रती षोद भूमि पाई प्रतिमा सु घन राषियै। षाती को बुलाय कही "लही यहु लेहु तुम", उन पाँय परि कह्यौ रूप मुख चाषियै ॥ ३५१ ॥ (६२९-३५१ = २७८)

वार्तिक तिलक।

आपको कुछ कष्ट में देख कर भगवत ने तीन बेर स्वप्न में आज्ञा की कि "मधुपुरी (श्री मथुरा जी) जाओ"। आज्ञानुसार मथुरा जी गए, परन्तु वहां अपनी जाति को और ही रंग में अर्थात् भगवद्भक्ति से विमुख पाया, इस कारण से एक बढ़ई साधु सेवी के घर में आसन किया।

आपकी स्त्री परम सती गर्भवती थीं, इससे द्रव्य के अभाव से कुछ शोच हुआ। मिट्टी खोदते में श्री सीताराम कृपा से बहुत सा धन और एक भगवतप्रतिमा प्राप्त देख कर आप उस बढ़ई भक्त को देने लगे; पर भक्त जी ने पांव पड़कर विनय किया कि भगवत की और भागवत की सेवा के योग्य आपही हैं॥

(४३६) टीका कवित्त (८४२-४३६=४०६)

करें सेवा पूजा, और काम नहिं दूजा, जब फैलि गई भक्ति, भये शिष्य बहु भाय के। बड़ोई समाज होत, मानों सिंधु सोत आये विविधि, बधाये गुनीजन उठें गाय के॥ आई एक नटी गुण रूप धन जटी, वह गावे तान कटी, चट पटीसी लगाय के। दिये पट भूषन ले, भूषन मिटत किंहूं, चहूं दिसि हेरि पुत्र दियौ अकुलाय कै॥ ३५२॥ (६२९-३५२=२७७)

वार्तिक तिलक।

श्रीविट्ठल जी पूजा छोड़ और कुछ नहीं करते थे, सो

आप की भगवत सेवा ऐसी विख्यात हुई कि बहुत लोग आ आ के आपके चेले हुए। बड़ धूमधाम से समाज होता था मानो उत्सव के सोते समुद्र में आ पहुँचते थे। गुणीयों का नाचना गाना भी भले प्रकार से होता था। एक दिन एक गुणवती नटी ने भगवत के आगे ऐसा नृत्य और कीर्त्तन किया कि बेसुध होकर श्री बिट्ठलदास जी ने सब सम्पति की तो बात ही क्या, बरञ्च अपने पुत्र श्री रंगीराय जी तक को भी श्री भगवत पर न्यवछावर करके उस नटी को दे दिया। (दो०) " रूप, चोज की बात पुनि, सरस कटीली तान। रसिक प्रवीणन के हिये, छेदन को ये बान " ॥

(४१७) टीका। कवित्त (८४२-४३७=४०५)

" रंगी राय " नाम ताकी सिष्य एक राना सुता, भयो दुष भारी नेकु जलहूं न पीजियै। कहि के पठाई वासों, " चाहो सोई धन लीजे, मेरो प्रभु रूप मेरे नैननिकूं दीजिये " ॥ " द्रव्य तौ न चाहौं, रीझि चाहौं तन मन दियौ; " फेरि कै समाज कियौ विनती को कीजियै। जिते गुनीजन तिनै दिये अनगन दाम, पाछे नृत्य कर्‌यौ आप, देत सो न लीजिये ॥ ३५३ ॥ (६२९-३५३ = २७६)

श्रीरंगी राय जी की शिष्य राना की एक लड़की थी; इसने यह सुनकर कि हमारे गुरुजी को इनके पिता श्रीबिट्ठल दास जी ने अमुक नटनी को दान कर दिया, अन्न जल छोड़ दिया; और उस नटनी को कहला भेजा कि मनमाना

धन मुझसे ले मेरे गुरु भगवान् को मुझे दे कि दर्शन किया करूं। उसने उत्तर दिया कि "मैं द्रव्य की भूखी नहीं, हां रीझने पर तो तन मन धन सबही दे सकती हूं"।

राजकन्या ने श्रीबिट्ठल जी से बहुत विनय करके, पुनः भागवत समाज कराया। सब गुणी नाचे गाए, उनको इसने बहुत कुछ दिया, और इसने आप भी भगवत के आगे नृत्य किया; श्रीबिट्ठल जी न्यवछावर देने लगे पर न लिया।

(४३८) टीका। कवित्त (८४२–४३८ = ४०४)

ल्याई एक डोला मैं बैठाय रंगीराय जू को, सुन्दर सिंगार, कही वार तेरी आइयै। कियौ नृत्य भारी जो विभूति सो तौ वारि लिये भरि अंक वारी भेंट किये द्वार गाइयै॥ "मोहन न्योछावर मैं भयौ, मोहि लेहु मति," लियौ उन शिष्य, तन तज्यौ कहा पाइयै॥ कह्यौ जू चरित्र बड़े रसिक बिचित्रन को, जौ पै लाल मित्र कियौ चाहौ, हिये ल्याइयै॥ ३५४॥ (६२९–३५४ = २७५)

वार्तिक तिलक।

श्रीरंगीराय जी के सुन्दर. शृङ्गार कर, उनको डोले में बिठला, वह नटनी ले आई, और कहा कि "अब नृत्य करने की तुम्हारी बारी है।" श्रीरंगीराय जी ने ऐसा नृत्य तथा गान किया कि निपट रीझके नटी श्रीरंगीराय जी को न्यवछावर कर फिर श्रीबिट्ठलदास जी को देने लगी, पर जब आपने न लिया तो इनकी शिष्य राजकन्या ने इन

को ले लिया और अति प्रसन्न हुई ।

उसी क्षण श्रीरंगरायजी ने अपने प्राण भी भगवत को न्यवछावर कर दिये ।

बड़े बड़े रसिकों के चरित्र मैं ने गा सुनाये, जो आप चाहते हों कि "श्रीयुगल सर्कार के चरणों में प्रेमा परा भक्ति मुझे होवे," तो इन रसिकों के अपूर्व चरित्रों को अपने हृदयमें आप धारण करें ॥

---

(४१९) मूल । छप्पय । (८४२-४१९=४०१)

हरि राम हठीले भजन बल, राना को उत्तर दियौ॥ उग्र, तेज, उदार, सुघर, सुथराई सींवा। प्रेम पुंज, रसरासि, सदा गद्गद सुर (स्वर) ग्रीवा ॥ भक्तन को अपराध करै ताको फल गायो॥ हिरण्यकशिप प्रहलाद परम दृष्टांत दिषायो ॥ सस्फुट वकता जगत मै, राजसभा निधरक हियौ ॥ हरि राम हठीले भजन बल, राना को उत्तर दियौ॥८५॥ (२१३-८५=१२८).

वार्तिक तिलक ।

श्री हरिराम हठीले ।

श्री हरिराम हठीले जी उग्र, तेजस्वी, उदार, सुघर, बड़े सुन्दर, प्रेमपुञ्ज, रसराशि, थे; आपके गले का स्वर सदा गदगद रहा करता था । जो कोई किसी हरिभक्त का

अपराध करे उसका क्या फल होता है, सो श्रीप्रह्लाद जी के शत्रु हिरण्य कशिपु का उदाहरण देकर, राज सभा में, राना से, निधड़क और स्पष्ट रूप से कह ही सुनाया; भगवत भजन के बल से जी में राना का कुछ डर न आया।

(४४०) टीका। कवित्त (८४२–४४० =४०२)

राना सों सनेह, सदा चौपर कौं खेल्यौ करै, ऐसो सो सन्यासी, भूमि संत की छिनाई है। जायकै पुकार्‌यौ साधु, झिरकि बिडार्‌यौ, पर्‌यौ बिमुखके वस, बात सांची लै झुठाई है॥ आये हरिराम जू पै, सबही जताई, रीति प्रीति करि बोले चल्यौ आगे आवै भाई है॥ गये, बैठे, 'आयौ जन' मन मै न ल्यायौ नृप, तब समुझायौ, झार्‌यौ; फेरि भू दिवाई है॥ ३५५॥ (६२९–३५५ = २७४)

वार्तिक तिलक।

राना के दर्बार में एक सन्यासी ऐसा था जो राना के साथ चौपर खेला करता और उस कारण वह बहुत मुँह लगा हो गया था। उसने एक बैरागी साधु की भूमि छिनवादी! सन्त ने राजसभा में जाकर पुकारा; परन्तु उस विमुख (सन्यासी) के बश में होकर राना ने इन्हें झिड़की के साथ निकलवा दिया; सच्चे पुकार को झूठा समझा।

बैरागी सन्त ने आकर श्रीहरिराम जी से अपना सब वृत्तान्त निवेदन किया। आप इन्हे भाई जानकर अथवा यह बात मन भाई मान, रीति प्रीति कर, बोले कि "चलो"।

आप उनको लेकर राना के दर्बार में जा बैठे, पर राना तनक भी अपने मनमें यह बात न लाया कि हरिजन आए हैं। तब आपने उस राना को फटकारा, और हिरणकशिपु की दशा सुनाकर उसे समझा दिया कि सन्त का अपराध करने का परिणाम कैसा होता है। राना ने साधु की भूमि फेर दी। वे परस्पर मुदित हुए।

(४४१) मूल। छप्पय (८४२–४४१=४०१)

"कमलाकर" भट, जगत में, तत्व वाद रोपी धुजा॥ पंडित कला प्रवीन अधिक आदर दे आरज। संप्रदाय सिर छत्र, द्वितीय मनों "मध्वाचारज"॥ जेतिक हरि अवतार, सबै पूरन करि जानै। परिपाटी "ध्वजविजै" सदृश, भागौत बखानै॥ श्रुति, स्मृति, संमत पुरान, तप्तमुद्राधारी भुजा। "कमलाकर भट" जगत में, तत्ववाद रोपी धुजा॥ ८६॥ (२१३–८६=१२७)

वार्तिक तिलक।

श्रीकमलाकर भट्ट जी।

पण्डित श्रीकमलाकर भट्ट जी ने जगत में तत्ववाद का ध्वजा फहराया था। कला प्रवीण थे, और आर्य्य (श्रेष्ठ) लोगों का बड़ा आदर मान किया करते। "श्रीमाध्व सम्प्रदाय" के सीस के छत्र, मानो द्वितीय "मध्वाचार्य्य"

ही थे । भगवान् के जितने अवतार, उन सब के सब ही को पूर्ण अवतार मानते, अंश कला भेद नहीं रखते थे । "विजय ध्वजी" परिपाटी के अनुसार "श्रीमद्भागवत" की कथा कहते; श्रुति, स्मृति, पुराण, सब से सम्मत, किसी से कुछ विरोध नहीं रखते; अपने भुजाओं पर भगवत आयुधों की तप्त मुद्रा धारण किये हुए थे ।

(४४२) मूल । छप्पय (८४२–४४२ = ४००)

"ब्रज" भूमि उपासिक भट्ट सो, रचि पचि हरि एकै कियौ ॥ गोप्य स्थल मथुरा मंडल जिते, "वाराह" बषाने । ते किये "नारायण" प्रगट प्रसिद्ध पृथ्वी मैं जाने ॥ भक्तिसुधा कौ सिंधु, सदा सतसंग समाजन । परम रसज्ञ, अनन्य, कृष्ण लीला कौ भाजन ॥ ज्ञान समारत पच्छ कौं नाहिन कोउ षंडन बियौ ॥ ब्रज भूमि उपासक भट्ट सो रचि पचि हरि एकै कियौ ॥ ८७ ॥ (२१३–८७ = १२६)

वार्तिक तिलक ।

श्रीनारायण भट्ट जी ।

श्रीनारायण भट्ट जी ब्रज की भूमि के उपासक हुए, नाम, रूप, लीला, धाम को एक ही करके (अभेद) मानते थे । आप ने वाराह पुराणानुसार श्री मथुरा मंडल के सब गोप्यस्थल प्रगट किये । आप भक्ति पियूष के सागर, और

सन्तों के समाजों में रहनेवाले, परम रसज्ञ, अनन्य, और श्रीकृष्णलीला के बड़े प्रेमी थे। किसी स्मार्त के पक्ष को खंडन नहीं करते थे।

(४४३) टीका। कवित्त (८४२–४४३ = ३९९)

भट्ट श्रीनारायन जू भये ब्रज परायन, जायँ जाही ग्राम तहां ब्रत करि ध्याये हैं। बोलिकै सुनावैं इहां अमुको सरूप है जू, लीला कुंड धाम स्याम प्रगट दिखाये हैं॥ ठौर ठौर रास के विलास लै प्रकाश किये, जिये यों रसिक जन कोटि सुख पाये हैं॥ "मथुरा" ते कही "चलौ वेंनी," पूछै वेंनी कहां? "ऊंचेगांव" आप खोदि सो तलै लखाये हैं॥ ३५६॥ (६२९–३५६ = २७३)

वार्तिक तिलक।

श्रीनारायण भट्ट जी ब्रजभूमि परायण हुए; जिस ग्राम में जाते ब्रज का ही ध्यान किया करना ही आपका व्रत था; लोगों को बुलाकर बताते थे कि "यहां अमुक मूर्त्ति है, खोदो तो निकलै; यहां अमुक कुण्ड है, यहां अमुक धाम है," और प्रगट दिखा भी दिया करते थे। ठौर ठौर रहस्य विलास प्रकाश करते कि "यहां हरि ने अमुक लीला की है;" जिसको जानकर रसिकों को बड़ा ही आनन्द होता था। आपने कहा कि "श्री बेणी तीर चलो"। लोगों ने पूछा कि बेणी कहां है? आपने "ऊंचे-गांव" में उनको लेजा, पृथ्वी खोदवा, श्रीबेणी जी का स्रोत दिखा दिया।

(४४४) मूल । छप्पय (८४२-४४४ = ३९८)

श्री ब्रजबल्लभ सु "वल्लभ," दुर्लभ सुष नैननि दिये॥ नृत्य गान गुण निपुन रास में रस वरषावत। अव * लीला ललितादि वलित दंपतिहिं रिझावत * ॥ अति उदार निस्तार, सुजस ब्रज मंडल राजत * । महा महोत्सव करत, बहुत सबही सुख साजत * ॥ श्रीनारायण भट्ट प्रभु, परम प्रीति रस वस किये। श्री ब्रजवल्लभ वल्लभ, दुर्लभ सुख नैननि दिये ॥८८॥ (२१३-८८ = १२५)

वार्तिक तिलक।

श्री बल्लभजी।

श्रीबल्लभ जी ब्रज भूमि से बड़ीही प्रीति रखते; और ब्रज मण्डल के लोग भी आप से बड़ी प्रीति करते थे; क्योंकि आप ने सब के नेत्रों को श्री रहस्य लीला का दुर्लभ सुख दिया था; नृत्य, संगीत, और और गुणों में आप प्रवीण थे; और रहस्य लीला में आप आनन्द रस की बरषा किया करते थे। श्री ललितादि सखियों समेत श्रीराधाकृष्ण जी को रिझाया करते थे। आप कलिजीवों के निस्तारक हुए। श्रीब्रज मण्डल में आज भी आपका सुयश छा रहा है। बड़े सुख साज के साथ, महामहोत्सव किया करते थे। श्रीबल्लभाचार्य्य जी ने श्रीनारायण भट्ट को, परम प्रीति से रस बस किया था।

* बहुतेरे कहते हैं कि आप (श्रीवल्लभ जी), श्रीनारायण भट्ट जी के शिष्य थे, और और लोगों का कहना है कि दोनों परस्पर प्रेमी थे। आप श्रीनाभा स्वामी के समय में, और विक्रमी सम्वत १६३२ सन १५७५ (1575) ईसवी के लगभग वर्त्तमान थे। उस समय के बादशाह की सम्मति लेकर और श्रीनारायण भट्ट जी की सहायता पाकर, आपने रहस्य लीला के महोत्सव का प्रकाश किया।

---

(४४५) मूल। छप्पय (८४२–४४५ = ३९७)

संसार स्वाद सुख वांत ज्यों, दुहुं "रूप," "सनातन" त्यागि दियौ॥ गौड़ देश बंगाल हुते सबही अधिकारी। हय गय भवन भंडार विभौ भूभुज उन हारी॥ यह सुख अनित्य विचारि वास वृंदावन कीन्हौ। यथा लाभ संतोष कुंज कर वामन दीन्हौं॥ ब्रज भूमि रहस्य राधाकृष्ण भक्त तोष उद्धार कियो॥ संसार स्वाद सुख वांति ज्यों दुहुँ रूप सनातन त्यागि दियो॥ ८९॥ (२१३ –८९ = १२४)

(१) श्रीरूप जी। (२) श्रीसनातन जी।

वार्तिक तिलक।

श्रीरूप जी तथा श्रीसनातन जी दोनों भाइयों ने संसार स्वाद के सब सुखों को उवान्त (वमन कियेहुए) की भांति परित्याग कर दिया।

आप गौड़देश बंगाले के शासक के एक बड़े अधिकारी थे; आप दोनों भाई बड़े विभव वाले थे; हाथी, घोड़े, भवन, भूमि, भंडार, सब कुछ भूभुज (अवनीश) केसे रखते थे। एक समय रुपये गिनते गिनते ही सारी रात व्यतीत हो गई। यह अनित्य सुख आपको ग्लानि तथा बड़ी विरक्ति का कारण हुआ। अपने गुरु श्रीनित्यानन्द जी की आज्ञा से दोनों भाइयों ने श्रीवृन्दावन में बास किया। यथा लाभ सन्तोष यह आप में पूरा था। केवल करवा कोपीन और श्रीवृन्दावन के कुंज, के अतिरिक्त अन्य कुछ में आपने मन नहीं दिया। व्रज भूमि के तीर्थों को और श्रीराधाकृष्ण भक्त सुखकारी के रहस्य को प्रकाश किया।

☞ आप सम्वत १६३० सन १५७३ (1573) ई० कलिअब्द ४६७४ में वर्त्तमान थे।

(४४६) टीका। कवित्त (८४२–४४६=३९६)

कहत वैराग, गए पागि नाभा स्वामी जू वे, गई यों निवर तुक पांच लागी आँचि है। रही एक मांझ, धर्‌यौ कोटिक कवित्त अर्थ, याही ठौर लै दिखायो कविता कौ सांचि है॥ राधाकृष्ण रस की आचारजता, कही यामें, सोई "जीवनाथ भट्ट" छपै वानी नांचिहै॥ बड़े अनुरागी ये तौ, कहिबौ बड़ाई कहा, अहो जिनि कृपा दृष्टि प्रेम पोथी बांचिहै॥३५७॥
(६२९–३५७ = २७२)

वार्तिक तिलक।

श्रीनाभा स्वामी जू महाराज श्रीरूपसनातन जी के

वैराग्य ही के वर्णन में, अपने छप्पय के पांच तुक तक निवर गए, ऐसे अनुरक्तिविरक्ति के आवेश में आप पग गए। बचे हुए केवल एकही तुक में श्रीस्वामी जू ने कोटि कवित्त के अर्थ रखदिये; कविता की सचाई और स्वरूप ऐसेही एसही ठौर में प्रगट होते हैं। श्रीराधाकृष्ण रस के आचार्य्य श्रीरूपसनातन जी हैं, यह आपकी आचार्य्यता कही है। इसी प्रकार श्रीजीवनाथ भट्ट जी के छप्पय में भी वाणी की चमत्कृति प्रगट है। आप बड़े ही अनुरागी थे इसका कहना ही क्या है। अहो ! जिनकी कृपा कटाक्ष से प्रेम की पोथी पढ़ी जाती है॥

(४४७) टीका। कबित्त (८४२–४४७ = ३९५)

बृन्दाबन ब्रज भूमि जानत न कोऊ प्राय, दई दरसाय जैसी शुक मुख गाई है। रीतिहूं उपासना की भागवत अनुसार, लियो रससार सो रसिक सुखदाई है॥ आज्ञा प्रभु पाय पुनि "गोपीस्वर" लगे आय, किये ग्रंथ पाय भक्ति भांति सब पाई है। एक एक बात में समात मन बुद्धि जब, पुलकित गात दृग झरी सी लगाई है॥ ३५८॥ (६२९–३५८ = २७१)

वार्तिक तिलक।

श्रीब्रजभूमि वृन्दावन को उस समय प्रायः कोई नहीं जानता था; श्रीरूपसनातन जी व श्री जी दोनों भाइयों ने ही श्री कृष्णचैतन्य महा प्रभु जी के अनुशासन से वहां आकर

वैसीही दिखा दी कि जैसी श्रीशुकदेव स्वामी ने वर्णन किया है । आपने उपासना की रस राशि रीति भी श्रीमद्-भागवत के अनुसार प्रकाश की, कि जो रसिक जनों को अति सुखदाई है ।

श्रीयमुना जी, कुंजबन और दो चार घरों के पुरवे के अतिरिक्त उस समय वहां कुछ न था । श्रीवृन्दा देवी जी की पूजा के लिये लोगों का जाना सुन आप दोनों भी वहीं जा रात्रि में बसे । वृन्दा देवी जी ने दर्शन दिया ।

पुनि श्रीकृष्ण भगवान् की आज्ञा पाके श्रीगोपीश्वर महादेव जी के दर्शन किये । श्रीशिव जी के अनुग्रह तथा स्वप्न देने से श्रीरूप जी ने श्रीहरिभक्ति के विविध ग्रन्थ, (भक्तिरसामृत, रससिद्धान्त, भगवत अमृत, इत्यादि) रचे कि जिनकी एक एक बात में मन बुद्धि के प्रवेश करने से गात पुलकित होता है, और नयनों से प्रेमाश्रु की झड़ी सी लग जाती है ।

श्रीवृन्दा देवी जी ने आज्ञा की, तब इनकी मूर्त्ति को दोनों महानुभावों ने खोद निकाली और स्थापना किया । जब किसी की गऊ बच्चा देती है तो वह कुछ दिन तक श्रीवृन्दा देवी जी को दूध चढ़ाता है ॥

(४४८) टीका । कवित्त (८४२-४४८ = ३९४)

रहै " नन्दगांव " , " रूप " आये, श्री " सनातन " जू महा सुख रूप भोग खीर कौ लगाइयै । नेकु मन आई,

सुखदाई प्रिया लाडिली जू मानो कोऊ बालकी सुसौंज सब ल्याइयै ॥ करिकै रसोई सोई, लै प्रसाद पायौ, भायो, अमलसो आयो चढ़ि, पूछी, सो जताइयै । " फेरि जिनि ऐसी करौ यही दृढ़ हियें धरौ ढरौ निज चाल, " कहि आंषें भरि आइयै ॥ ३५९ ॥ (६२९-३५९ = २७०)

वार्तिक तिलक।

श्रीरूप जी नन्दगांव से श्रीसनातन जी के पास आए। इनकी यह इच्छा हुई कि तस्मई (क्षीरान्न) युगल सर्कार को भोग लगाकर सोई प्रसाद ऐसे महानुभाव को पवावैं। यह बात जैसे मन में आई ही थी कि परम सुखदाइनि श्रीराधिका लाडली जू एक बालिका का रूप धर खीर भोग का सब सौंज लेही आई। श्रीसनातन जी ने रसोई करके श्रीयुगलसर्कार को भोग लगाया। जब दोनों प्रेमियों ने प्रसाद पाया, तो अद्भुत स्वाद आया बरन कुछ अमल सा चढ़ आया। श्रीरूप जी ने इसका कारण पूछा। श्री सनातन जी ने उत्तर में सब वार्ता कह सुनाई। श्रीरूप जी ने आज्ञा की कि फिर कभी ऐसा न हो, इस बात को हृदय में दृढ़ करके रक्खो। अपनी विरक्ति चाल पर ही चलो। दोनों मूर्ति श्रीलली जी की कृपा को स्मरण कर प्रेम जल आंखों से बरसाने लगे ॥

(४४९) टीका। कवित्त (८४२-४४९ = ३९३)

रूप गुण गान होत, कान सुनि सभा सब अति अकु-

लान प्रान, मूरछा सी आई है। बड़े आप धीर रहे ठाढ़े, न सरीर सुधि, बुधि मै न आवै ऐसी बात लै दिखाई है॥ श्रीगुसांई "कर्णपूर" पाछे आय देखे आछे, नेकु ढिग भये, स्वास लाग्यौ तब पाई है। मानो आगि आंच लागी, ऐसो तन चिन्ह भयो, नयौ यह प्रेम रीति का पै जात गाई है॥ ३६०॥ (६२९–३६० = २६९)

वार्तिक तिलक।

एक रात श्रीरूप गुसाईं जी के [1] समाज में श्रीहरि रूप गुण नाम का कीर्तन गान ऐसा हो रहा था कि समाज के समाज सब ही बेसुध हो रहे थे प्रेम में प्राण ऐसे व्याकुल हुए कि सब को मूर्छा सी आ गई। परन्तु आप बड़े धीर थे खड़े ही रहे, [2] हां शरीर की सुधि तो न थी। गुसाईं श्रीकर्णपूर जी के मन में आया कि 'आपको देखें तो'। सो ये आपके कुछ समीप गए, आप के स्वांस जो इनके लगे तो ऐसे तप्त थे कि मानो आग की आंच लगी; इनके शरीर में फफोले पड़ आए। यह प्रेम रीति नई है किससे इसका वर्णन हो सके।

१. कहते हैं कि श्रीकृष्ण चैतन्य महा प्रभु के गोलोक वासी होने पर आपके समाज के लोग श्री पुरुषोत्तमपुरि से श्रीवृन्दावन में श्रीरूप सनातन जी के पास चले आए॥ २ जब शरीर का अभिमान नहीं रहता तो मूर्छा नहीं होती है।

(४५०) टीका। कवित्त (८४२–४५० = ३९२)

"श्रीगोविन्दचन्द" आय निसि कौ स्वपन दियौ, दियौ

कहि भेद सब जासों पहिचानियै। रहौं मैं खरिक मांझ पोषैं निसि भोर साँझ, सीचैं दूध धार गाय, जाय देखि जानियै ॥ प्रगट लै कियौ, रूप अतिही अनूप छबि, कबि कैसें कहै, थकि रहै, लषि मानियै। कहां लौं बषानौं भरै सागर न गागर मै, नागर रसिक हिये निसि दिन आनियै ॥ ३६१ ॥ (६२९–३६१ = २६८)

वार्तिक तिलक।

श्रीगोविन्दचन्द्रजी ने आपको स्वप्न में दर्शन देकर आज्ञा की कि "खरिक में अमुक ठिकाने मेरी मूर्त्ति है, भूमि खोदके निकालकर स्थापित करो;" पहिचानने के अर्थ गोविन्ददेव जी ने पूरे पूरे सब पते बता दिये और यह भी कहा कि "गऊ सब भोर सांझ वहां मुझको दूध चढ़ाती हैं, जाके देखो"। श्रीरूप सनातन जी ने श्रीगोविन्दचन्द्र की मूर्त्ति प्रगट की; ऐसी अनूप प्रतिमा कि उसकी छबि बखान्ने में कवि लोग थकित हो जाते हैं, देखते ही बनता है। मैं कहां तक बखान करूं सागर कहीं गागर (घड़े) में समा सकता है? रसिक जनों के हृदय में प्रभु दिन रात विराजते हैं ॥

(४५१) टीका। कवित्त (८४२–४५१ = ३९१)

रहैं श्री "सनातन" जू "नन्दगांव" "पावन" पै, आवन दिवस तीन दूध लै कै प्यारियै। सांवरो किशोर, आप पूछे "किहिं ओर रहो?" "कहे चारि भाई" पिता रीतिहूँ उचारियै॥ गये ग्राम, बूझी घर, हरि पै न पाये कहूं,

चहूं दिसि हेरि हेरि, नैन भरि डारियै। अब के जो आवै, फेर जान नहीं पावै; सीस लाल पाग भावै, निसि दिन उर धारियै ॥ ३६२ ॥ (६२९-३६२ = २६७)

वार्तिक तिलक ।

श्रीसनातन जी नन्दगांव में पावन सर पर रहते थे; श्री प्रिया प्रियतम जी की कृपा से दूध मिला करता था; एक बेर तीन दिन पर्य्यन्त नहीं मिला । चौथे दिन एक सांवले किशोर ने क्षीरान्न (खीर) प्रसाद लाकर दिया । आपने इनकी सुन्दरता देखपूछा " लाला ! तुम रहते कहां हो ? " आपने उत्तर दिया कि मैं चार भाई हूं, " और अपने पिता का भी पता बताया । श्रीसनातन जी ने उस गांव में जाकर उनका घर लोगों से पूछा परन्तु श्रीहरि का पता कहीं नहीं पाया ! चारों दिशि ढूंढ थके, नेत्रों से आंसू बहाने और कहने लगे कि वे चितचोर लाल पगिया वाले अब यदि आवेंगे, तो फिर उनको जाने न दूंगा" । इसी भांति प्रभु के प्रेम में आप मग्न रहा करते थे ॥

(४५२) टीका । कवित्त (८४२-४५२ = ३९०)

कही ब्याली रूप वेनी, निरखि सरूप नैन, जानी श्री सनातन जू काव्य अनुसारियै । " राधा सर " तीर द्रुम डार गहि झूलैं, फूलै, देषत लफलफात गति मति वारियै ॥ आये यों अनुज पास, फिरै आस पास, देखि भयौ अति त्रास, गहे पाउ, उर धारियै ॥ चरित अपार, उभै भाई हित

सार पगे, जगे जग मांहि, मति मन मै उचारियै॥३६३॥
(६२९-३६३ = २६६)

वार्तिक तिलक।

श्रीसनातन जी ने अपने अनूप काव्य में श्री प्रिया जी की चोटी को व्याली रूप कहा है (नागिन की उपमा दियी है)। श्रीरूप जी को दुष्ट जीव की उपमा भली नहीं लगी पर काव्य रीति समझ चुप रह गए। एक दिन श्री राधा सर के तीर एक वृक्ष में झूला देखा कि बहुत सी सखियां श्री लाडली जी को झुला रही हैं, और श्रीलली जी की वेणी ठीक नागिन के बच्चे की भांति लहलहाती अत्यन्त शोभा देती है। आप को उस काव्य का स्मरण हुआ और आनन्द में फूले न समाए, गति मति सब न्यवछावर कर दिया।

अनुज (छोटे भाई) के पास आ, आप का परिकर्मा कर, पांव पड़, बड़े त्रसित हुए; और सम्पूर्ण वार्त्ता कह सुनाई।

दोनों भाइयों के प्रेम तथा चरित अपार, परमार्थसार, और जग में विख्यात हैं। मन बुद्धि को इसमें डुबा के परम सुख लेना चाहिये।

श्रीरूप सनातन जी ने श्रीगोविन्दचन्द्र * जी की पूजा की आज्ञा अपने भतीजे "जीवगुशाईं जी" को दी, ये गृहस्थाश्रम को त्याग कर आपके पास आगए थे।

आमेर के राजा मानसिंहने आपके दर्शन कर प्रार्थना की

कि " कुछ आज्ञा कीजिये " आप ने कहा " कोई आवश्यकता नहीं "। पर बड़ा हठ और विनय से आज्ञा की कि " श्रद्धा हो तो श्रीगोविन्ददेव जी का मन्दिर बनवादो " राजा मानसिंह ने (कहते हैं कि तेरह लाख रुपए में, अकबर बादशाह से आज्ञा लेकर लाल पत्थर से कि जिस्से उन्हीं दिनों में सम्वत १६२१ । १६३१ में अकबराबाद (आगरे) का क़िला बन रहा था) बनवा दिया ।

* राजा जैसिंह (जयपूर) बाराहपुराण में श्रीगोविन्ददेव जी के दर्शन का माहात्म्य सुन वृन्दावन में आ बड़ी विनती प्रार्थना कर श्रीगोविन्दचन्द्र जी को जयपूर ले गया; यहां आप की एक मूर्त्ति बनवाकर रख गया । यह बात "मुहम्मदशाह " बादशाह के समय में हुई कि जिस्का राज्य विक्रमी सम्वत १७७६ से १८०५ तक था ॥

(४५१) मूल । छप्पय (८४२–४५१ = ३८९)

श्री हरिवंश गुसाईं भजन की, रीति सकृत कोउ जानिहै ॥ श्रीराधा चरण प्रधान हृदै अति सुदृढ़ उपासी । कुंज केलि दंपति तहां की करत खवासी ॥ सर्वसु महा प्रसाद प्रसिद्धताके अधिकारी । विधि निषेद नहि, दास अनन्य उतकट व्रत धारी॥ व्यास सूवन पथ अनुसरै सोई भलै पहिचानिहै । श्रीहरिवंश गुसाईं भजन की रीति सकृत कोउ जानि है ॥ ९० ॥ (२१३–९० = १२३)

वार्तिक तिलक। "खवासी" خواصی = विशेष कैंकर्य्य।

श्रीहितहरिवंश जी।

गुसाईं श्रीहितहरिवंश जी के भजन की रीति विरलय कोई जान सकता है। श्री प्रिया प्रियतम के चरणों के उपासक थे। श्री राधाजी को प्रधान मानते थे। आप के हृदय में अति सुदृढ़ भक्ति थी। दम्पति के कुंज केलि के विशेष कैंकर्य्य, भावना में सखी भाव से, किया करते थे। श्रीमहाप्रसाद में आप का विश्वास प्रसिद्ध है; उस के बड़े अधिकारी थे क्योंकि महाप्रसाद को अपना सर्वस्व जानते थे। बिधि निषेध (सामान्य धर्म) पर चित न देकर, भागवत धर्म (विशेष धर्म) अनन्य भक्ति का उतकट व्रत मन में रखकर श्रीराधाकृष्ण की बड़ी भाग्यवती दासी रहे। श्रीव्याससुवन (श्री १०८ शुकदेव जी) के* तथा आप के मार्ग पर चलनेवाला ही भाग्यभाजन इस पथ को पहिचान सकता है, और प्रायः प्रेमी रसिक जन कोई कोई जानते हैं॥ ("श्रीराधा जहँ पग धरैं, लाल धरैं तहँ नैन")

* श्री हरिवंश जी के पिता का भी नाम "व्यास" जी था॥

(४५४) टीका। कवित्त (८४२–४५४ = ३८८)

हित जू की रीति कोऊ लाखनि मैं एक जानै; "राधा" ही * प्रधान मानै पाछे कृष्ण ध्याइयै। निपट बिकट भाव, होत न सुभाव ऐसौ; उनहीं की कृपा दृष्टि नेकु क्यौंहूं पाइयै॥ विधि औ निषेध छेद डारे, प्रान प्यारे हियै, जियें

निज दास निसि दिन वहै गाइयै । सुखद चरित्र, सब रसिक विचित्र नीकें जानत प्रसिद्ध, कहा कहिकै सुनाइयै ॥ ३६४ ॥ (६२९—३६४ = २६५)

* पाठान्तर " राधा ई "

वार्तिक तिलक ।

श्रीहितहरिबंश जी की भजन-रीति, लाखों में कोई एक जानता होगा; श्रीराधाकृष्ण जी का ध्यान किया करते, पर प्रधान श्रीराधा ही जी को मानते थे। यह भाव निपट विकट है, ऐसा सुभाव श्रीयुगलसर्कार की कृपा ही से होता है; आप की ही कृपा से किसी को कुछ कुछ यह भाव मिल सकता है ।

आप विधि तथा निषेध के झंझट से निर्द्वन्द्व थे; उनके प्राण प्राणनाथ ही थे जो हृदय में बसते थे; निशिदिन आप श्रीदम्पति की सेवा अति प्रीति से करते और दम्पति केलि का ही गान किया करते थे । सुखदाई विचित्र चरित्रों को सब विलक्षण रसिक जन भली भांति जानते हैं यह प्रसिद्ध ही है, मैं कहांतक कह सुनाऊं ॥ "श्रीराधावल्लभी" शृङ्गार भाव के आचार्य्य आप ही हैं ॥

(४५५) टीका । कवित्त (८४२–४५५=३८७)

आये घर त्याग, राग बढ्यौ प्रिया प्रीतमसों, विप्र बड़ भाग हरि आज्ञा दई जानियै । तेरी उभै सुता, व्याह देवौ, लेवौ नाम मेरो, इनकौ जो वंश सो प्रसंस जग मानियै॥ ताही

द्वार सेवा विस्तार निज भक्तन की अगतिन गति, सो प्रसिद्ध पहिचानियै । मानि प्रिय बात गह गह्यो सुख लह्यो सब, कह्यो कैसें जात यह मत मन आनियै ॥ ३६५ ॥ (६२९ –३६५ = २६४)

वार्तिक तिलक ।

आप देवनन्द (सर्कार सहारनपूर) के वासी, व्यास जी नाम गौड़ ब्राह्मण तथा श्री तारा देवी के पुत्र थे। आप के पिता बादशाह के नौकर भारी अधिकार वाले थे। श्रीनृसिंह भगवान् की कृपा से दम्पति श्रीताराव्यास के पुत्र अर्थात् इन्ही श्रीहितहरिवंश जी का जन्म, विक्रमी सम्वत १५५९ में, हुआ। रुक्मिणि नाम स्त्री से आप के दो पुत्र और एक कन्या हुई, जिस्के बिबाह से श्रीकृपा से शीघ्र भार रहित होकर आप घर छोड़ श्री वृन्दावन आए; श्रीयुगलसर्कार के चरणों में अधिक अनुराग बढ़ा, विशेषतः श्रीराधा जी के पद कंज में जिनकी कृपा अपार हुई॥

एक ब्राह्मण बड़भागी को प्रभु ने स्वप्न में आज्ञा की कि "हितहरिवंश जी को मेरी आज्ञा सुनाके तुम अपनी दोनों लड़कियां व्याह दो; इन से जग में प्रशंसनीय बंश होगा यह विश्वास करो; मैं उन्हीं के द्वारा निज भक्तों को भक्ति वृद्धि और बहु जीवों को कल्याण गति दूंगा इसको प्रमाण जानो"। इस प्रिय बाणी को सुन सब बड़े प्रसन्न हुए। जैसी रीति श्रीराधावल्लभ जी की सेवा प्रीति की

आप के सम्प्रदाय में प्रगट हुई, मन में समझने की बात है कही कैसे जावे। आप बीड़ाप्रसाद को एकादशी व्रत से लाख गुण अधिक समझते थे। इसकी चमत्कृति श्रीवृन्दावन में देखिये। वहां श्रीप्रिया जी का प्रताप प्रत्यक्ष है।

(४५६) टीका। कवित्त (८४२-४५६ = ३८६)

राधिका वल्लभ लाल आज्ञा सो रसाल दई सेवा मो प्रकास औ विलास कुंज धामकौ। सोई विस्तार सुखसार द्रिग रूप पियो, दियौ रसिकनि जिन लियौ पच्छ वाम कौ॥ निसि दिन गान रस माधुरीको पान उर अंतर सिंहा न एक काम स्यामाश्यामकौ। गुन सो अनूप कहि, कैसें के सरूप कहै, लहै मन मोद, जैसे और नहीं नामकौ ॥ ३६६ ॥ (६२९-३६६ = २६३)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीराधिका वल्लभ लाल ने रसाल आज्ञा दी जिससे सेवा की रीति का और कुंज तथा धाम के विलास का प्रकाश हुआ। सोई सुखसार का विस्तार पूर्वक श्रीकृपा से आंखों से दर्शन पाया, और रसिकों को बताया, इन भाग्यभाजनों ने श्री प्रिया जी की प्रधानता मान ली और आपका पक्ष लिया। रात दिन श्रीयुगल सर्कार के यश को गाते थे, रस माधुरी को पीते थे, कोई अन्य कामना नहीं रखते थे, केवल युगल सर्कार को हृदय के भीतर सिंहासन पर विराजमान कराए रहते थे। अनूप गुण नाम रूप हैं, मन ही उनसे मोद पाता

है; कहते नहीं बनता ।

(४५७) मूल । छप्पय । (८४२-४५७=३८५)

"आसधीर" उद्योत कर, रसिक छाप हरिदास की ॥ जुगल नामसों नेम, जपत नित कुंजविहारी । अवलोकत रहैं केलि, सखी सुख के अधिकारी ॥ गान कला गंधर्व, स्याम स्यामा कों तोषैं । उत्तम भोग लगाय, मोर मरकट तिमि पोषैं ॥ नृपति द्वार ठाढ़े रहैं, दरसन आसा जास की ॥ "आसधीर" उद्योत कर, "रसिक" छाप हरिदास की ॥ ९१ ॥ (२१३-९१=१२२)

वार्तिक तिलक ।

श्रीहरिदास जी रसिक ।

स्वामी श्री हरिदास जी शृङ्गार उपासना में बड़ेही दृढ़ और धीर हुए। अपने पिता श्रीआसधीरजी के सूर्य्यवत् प्रताप से रसिकों में आप प्रसिद्ध हुए । आप "श्रीरसिक जी" इस नाम से प्रसिद्ध थे । आप का नेम प्रेम श्री युगल नाम (श्रीराधाकृष्ण) से था; "श्री कुंजविहारी" को नित्य जपा करते थे । रसराज अर्थात् सखी सुख के अधिकारी थे, श्रीप्रिया प्रियतम की केलि (विहार) को सदैव देखा करते; संगीतकला में गन्धर्व से बढ़के थे; अपने गान से श्रीयुगल सर्कार को तुष्ट रखते; उत्तम २ भोग लगाया

करते; प्रसाद सन्तों तथा बन्दरों, मयूरों, मछलियों को भी बड़े प्रीति से पवाते थे। आपके दर्शन के लिये राजा लोग द्वारपर खड़े रहा करते थे॥

(४५८) टीका। कवित्त (८४२–४५८ = ३८४)

स्वामी "हरिदास" रसरास, को बखान सकै, रसिकता छाप जोई जाप मधि पाइयै। ल्यायौ कोऊ चोवा, वाकौ अति मन भोवा वामैं, डार्‍यौ लै पुलिन यह, "खोवा" हिये आइयै॥ जानिकै सुजान, कही "लै दिखावौ लाल प्यारे", नैसुकु उघारे पट सुगँध बुड़ाइयै॥ पारस, "पाषान" करि जल डर वाय दियौ, कियौ तब शिष्य; ऐसे नाना विधि गाइयै॥ ३९७॥ (६५९–३६७ = २९२)

"नैसुकु" = किंचित्, पटु, परदा। तथा श्री अङ्ग के वस्त्र।

वार्तिक तिलक।

रसिक स्वामी श्रीहरिदास जी के रस रास वा शृङ्गार निष्ठा का वर्णन किससे हो सकता है। श्रीयुगल सर्कार के नित्य विहार में सखी भावना से प्रस्तुत रहा करते थे। एक समय युगल मंत्र का जाप कर रहे थे उसी के मध्य श्री भगवत् का वचनामृत हुआ कि तुम को "रसिक" कहकर लोग नाम लिया करेंगे॥

किसी भक्तने आप को चोआ (इत्र) भेंट किया, जिस्को वह अति उत्तम समझता और जो उस्के जी को बहुत ही भाता था। आपने उस्को ध्यान से होली में प्रभु के ऊपर

और देखने में तो श्रीयमुना जी के पुलिन (रेत) में, जहां बैठे थे, डाल दिया। उसने खेद कर मन में कहा कि "ऐसा उत्तम विष्णुतैल, सो खो गया!" सुजान रसिक जी ने उसके मन की जान ली। आप ने एक दास को आज्ञा की कि "इनको ले जाकर श्री बांकेबिहारीलाल जी के दर्शन कराओ"। लिवा जाकर उसने पट उघार के दिखाया तो श्रीबिहारीजी के वस्त्र चोआ से तराबोर, तथा सारा मन्दिर वैसेही सुगन्ध से भरपूर पाया कि जैसा सुगन्ध उसके निवेदित चोआ में था। श्रीस्वामी जी के इस प्रभाव को समझ कर वह बड़ा लज्जित और हर्षित हुआ।

एक मनुष्य आपके पास शरणागत होने आया; उसने एक पारस मणि को भेंट में दिया। आपने पहिले उसे "पाषान" कह यमुना सरित के जल में फेंकवादिया। तब उसको शिष्य किया।

उस समय का बादशाह (अकबर), वेष छुपाके तानसेन के साथ जाकर आपके दरशनों से कृतार्थ हुआ। सम्बत १६११ से १६६२ के मध्य किसी समय की यह घटना है।

ऐसे ऐसे चरित आपके नाना प्रकार से गाए गए हैं॥

(४५९) मूल। छप्पय। (८४२-४५९ = ३८३)

उतकर्ष तिलक अरु दामको, भक्त इष्ट अति

"व्यास" कें॥ काहू के आराध्य मच्छ, कच्छ, नरहरि, सूकर। वामन, फरसाधरन, सेतबंधन, जु सैलकर॥ एकन कें यह रीति नेम नवधा सों लायें। सुकुल सुमोखन सुवन अच्युत गोत्री जु लड़ायें॥ नौगुण तोरि नूपुर गुह्यौ महत सभा मधि रास कें। उतकर्ष तिलक अरु दामको, भक्त इष्ट अति "व्यास" कें॥ ९२॥ (२१३-९२=१२१)

वार्तिक तिलक।

श्रीहरिवंशजी के शिष्य श्रीव्यासजी।

संतसेवी श्रीव्यास जी ऊर्द्धपुण्ड तिलक और श्री तुलसी की कण्ठी माला पर विशेष आग्रह रखते, माहात्म्य बड़ाई करते तथा हरिभक्तों को आप अपना परम इष्टदेव ही मानते थे। कोई २ श्रीभगवत के मत्स्य, कच्छप, बाराह, नृसिंह, वामन, परशुरामादिक अवतारों की आराधना करते हैं; कोई २ श्रीकृष्णचन्द्रजी की उपासना करते हैं; किसी २ के सर्वस्व श्रीसीतापति रामचन्द्र जी ही हैं; और किसी २ को भगवत की नवधा भक्ति का नियम होता है; परन्तु श्रीसुमोखन जी के पुत्र श्रीशुक्ल श्रीव्यास जी महाराज तो अच्युत गोत्री (भागवत, वैष्णव, भगवद्भक्त, सन्त) ही को अपना इष्ट जानकर भक्तों ही के लाड़ प्यार उपासना पूजा किया करते थे॥

एक रात शरद पूनो के रास रहस्य समाज के समय

श्रीप्रियाजी का नूपुर टूट गया; वहीं उसी क्षण अपने कंधे का नवगुण (अर्थात् यज्ञोपवीत) तोड़कर उसीसे श्रीपद-पंकज के घुंघरू को गूंथकर आपने ठीक कर पहना दिया। प्रेम की जय!!!

(४६९) टीका। कवित्त (८४२-४१० = ३८२)

आये गृह त्यागि, वृन्दावन अनुराग करि, गयौ हियो पागि, होय न्यारो तासों खीझिये। राजा लैन आयौ ऐपै जायबौ न भायौ; श्रीकिशोर उरझायौ मन, सेवा मति भीजिये॥ चीरा जरकसी सीस चीकनौ खिसिल जाय, "लेहु जू बँधाय, नहीं आप बांधि लीजिये"॥ गये उठि कुंज, सुधि आई सुख पुंज, आये देख्यौ बँध्यौ मंजु, कही कैसें मोपै रीझियै"॥ ३६८॥ (६२९-३६८ = २६१)

वार्तिक तिलक।

श्रीव्यास जी सनाढ्य ब्राह्मण, (महात्मा सुमोखन शुक्ल जी बुँदेलखंड ओड़छा निवासी के आत्मज) बड़े धर्मप्रचारक, श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदाय के, हुए। आपका पहिला नाम "हरीराम" था। "ओंड़छे" के रहनेवाले थे। जब पैंतालीस बर्ष के हुए तब, सम्वत १६१२ में, घर त्यागकर श्रीवृन्दावन आए। आपकी पद्धति के (१) वृन्दावनी व्यासवंशी गुशाईं, और (२) ओंड़छा वाले गुशाईं, दो नामों से विख्यात हैं।

आपको श्रीवृन्दावन में विशेष निष्ठा थी; धाम के प्रेम

में आपके अन्तःकरण पग रहे थे। जो श्रीवृन्दावन से जाया चाहता, आप उससे अप्रसन्न होते; ओंड़छे का नरेश ("मुद्गर") एक समय आपको विनयपूर्व्वक लेने आया; पर आप को श्रीवृन्दावन से अन्यत्र जाना नहीं भाता था; राजा को दिखा कर एक भंगिन के हाथ के पत्तल से श्रीगोविन्दप्रसाद सन्तों का उच्छिष्ट सीथ आप लेकर पागए (खा लिया), भला इस मर्म को नृपति क्या समझ सकता? वह लौट गया; आप अति प्रसन्न हुए, आपकी मति और मन तो श्रीकिशोर सेवा में गठे थे, कहने लगे कि "संसार एक पकौड़ी ही का हुआ"।

एकबेर परमोत्तम चीरा ठाकुरजी के सीस में बांध रहे थे, चिकनाई से सरक सरक जाते देख आप मन्दिर से यह कहते निकले कि "मुझ से बँधा लीजिए, यदि मेरा बांधा नहीं भावे तो आपही बांध लीजिये"। और सेवाकुंज दर्शन करने चले गए; कुछ क्षण बीते गृह के लोगोंने चीरा बांधे देख जा सुनाया; आप सुख पुंज पाय फिर गए तो ऐसा सुन्दर बँधा दर्शन पाए कि हर्ष से फूले न समाए; सब दर्शन कर २ चीरा की बँधाई की प्रशंसा करने लगे। आप बोले कि "जब आप ही ऐसा सुन्दर बांध सकते हैं, तब भला इस दीन का बांधा क्योंकर भावै"॥

(४६१) टीका। कबित्त (८४२–४६१=३८१)

संत सुख देन बैठे संगही प्रसाद लैन, परोसति तिया सब भांतिन प्रवीन है। दूध बरताई लै मलाई छिटकाई

निज, खिझि उठे, जानि पति पोषति नवीन है ॥ सेवालो छुटाय दई, अति अनमनी भई, गई भूख बीते दिन तीन तन छीन है। सब समझावैं, तब दंड को मनावैं, अंग आभरन बेचि साधु जेंवैं यों अधीन है ॥ ३६९ ॥ (६२९–३६९ = २६०)

वार्तिक तिलक।

सन्तों को सुख देनेवाले (श्रीव्यासजी) सन्तों को प्रसन्न रखने के अर्थ श्रीभगवतप्रसाद साथही (पंगत में) पाया करते थे। सब प्रकार प्रवीण स्त्री परसा करती थी यह सेवा उसी की थी। एक दिन दूध परसने में मलाई फिसल कर आप के पात्र में आ गिरी; आपको नवीन सन्देह हुआ कि पति जानकर विशेष पोषण मेरा इसके चित्त में आया; ऐसा सोचकर आपने उसपर बड़ा क्रोध किया। वह सेवा उनसे आपने छुड़ादी; सुशीला बड़ी अनमनी हो तीन दिन तक भूखी रहगई। उन्हें तनक्षीण देख सब ने श्रीभक्तजी को समझाया तब आपने उन्हें यह दंड किया कि वह सब भूषण बेचके सन्तों का एक भंडारा करदें। (दो०) "तब निज भूषण बेंचिके, नारी अति हरखाय। सन्त समाज बुलाइके, सादर दियो खवाय ॥" तब आपने उनको फिर सेवा दी ॥

(४६२) टीका। कवित्त (८४२–४६२ = ३८०)

सुता कौ बिवाह भयौ, बड़ौ उत्साह कियौ, नाना पकवान सब नीके बनि आये हैं। भक्तनि की सुधि करी खरी

अरबरी मति, भावना करत भोग सुखद लगाये हैं ॥ आय गये साधु, सो बुलाय कही पावैं जाय; पोटनि बँधाय चाय कुंजनि पठाये हैं । बंसी पहिराई; द्विज भक्ति लै दृढ़ाई; संत, संपुट मै चिरैया दै, हित सों बसाये हैं ॥ ३७० ॥ (६२१ –३७० = २५१)

" सम्पुट " = जिस डब्बा में ठाकुर जी को रखकर बटुआ में धरते हैं॥

वार्तिक तिलक ।

आपकी लड़की के बिवाह में, बड़े उत्साह से बारात के लिये नाना प्रकार के अच्छे अच्छे पकवान घरवालों ने बनवाए श्रीव्यास जी ने देखे। उन सब को सन्तों के योग्य समझकर आपकी भक्तिवती बुद्धि चंचल हो विचारने लगी; आपने भावना में भगवत को भोग लगाकर चुपके से सन्तों भक्तों को बुला बुलाकर कुछ को तो भोजन करा दिये और औरों को बड़ी २ गठरी बँधा पारस दे दे दिये वरन् कुंजोंमें भेज भेज दिये । परिवारवालों को बारात के लिये पुनः सामा नहीं बनवानी पड़ी बरन् "मिली साजु जैसी की तैसी।"

एक दिन एक बंशी सोने वा चांदी की श्रीकिशोरजी के हाथों में धारण कराते समय श्रीउंगली कुछ छिल गई, लुहू निकल आया ! श्रीव्यासजी बहुत पछताए और शीघ्र ही जल से आर्द्र वस्त्र (भीगा कपड़ा) श्रीअङ्गुलि में बड़े प्रेम से बांधा । * दृढ़ भक्ति तथा माधुर्य्य भाव की जय॥

* वहां ठाकुरजी की उंगली में अभी तक भीगे कपड़े के बांधने की परम्परा चली जाती है ।

पश्चिम देशके एक ब्राह्मण आप के यहां सीधा ले अलग रसोई करते पानी चमड़े के छागले में भरके काम में लाते; आपने उनको नए जूते में भरके घी, और द्विज देवता के क्रुद्ध होने पर यह उत्तर, दिया कि "जिस धातु का आपका जलपात्र है उसी धातु का तो यह घृतपात्र भी है" विप्र जी लज्जित और भक्त हो भगवतप्रसाद पाने लगे। यों उनको भक्ति में आपने दृढ़ कर दिया।

एक सन्त श्रीयुगल सर्कार को गीत बड़ी अच्छी भांति से सुनाया करते थे। इसलिये आप उन्हें जाने के समय बराबर प्रेम से रोक लिया करते थे। एक दिन उस सन्त ने हठ करके अपने ठाकुर का बटुआ मांगा; आपने श्रीसालग्राम-जी के बदले एक गौरैया चिड़िया उनके सम्पुट में रखकर बटुआ में भर के उनका बटुआ उनके हाथों में दिया। मार्ग में जब श्रीयमुना तट पूजने को सन्त ने बटुआ खोला तो चिड़िया श्रीकृपा से जीती हुई निकलकर उड़ गई फुर्र! साधु देवता लौट आकर आपसे पूछने लगे "मेरे ठाकुरजी उड़ आए हैं?" आपने कहा "देखलूं"। आप मन्दिर में से आकर कहने लगे कि "हां, वृन्दाबन से नहीं जाया चाहते।" सन्त प्रसन्न हो प्रेम से श्रीवृन्दाबन में बसे॥ प्रेम धन्य, कृपा धन्य, धामनिष्ठा धन्य॥

(४६३) टीका। कवित्त (८४२-४६३=३७९)

सरद उजारि रास रच्यो पिया प्यारि, तामें रंग बढ्यो

भारी, कैसें कहिके सुनाइयै । प्रिया अति गति लई, बीजुरी सी कौंधि गई, चकचौंधी भई छबि मंडल मैं छाइयै ॥ नूपुर सो टूटि छुटि पर्‌यौ, अरबर्‌यौ मन, तोरिकै जनेऊ, कर्‌यौ वाही भांति भाइयै । सकल समाज मैं यों कह्यौ "आज काम आयौ, ढोयो हों जनम," ताकी बात जिय आइयै ॥ ३७१ ॥ (६२९–३७१ = २५८)

वार्तिक तिलक ।

एक शरदपूनो की रातको रास हो रहा था, समाज में प्रेम रंग बहुत बढ़ाचढ़ा था वर्णन कैसे हो सके। श्रीप्रिया जी ने आवेश से ऐसी गति ली कि मण्डली में मानों बिजलीसी चमक उठी ऐसा प्रकाश हो गया, सबकी आंखों में चकाचौंध हो गया । परन्तु श्रीप्रियाजी का नूपुर (घुंघुरू) टूट गया, दाने छितरा गए। आपका मन चंचल हुआ, शीघ्रही आपने अपना जनेऊ तोड़कर उससे ठीक ठाक कर चरण में धारण करा दिया; और उस भरे महात्माओं के समाज में बोले कि "यज्ञोपवीत के भार को जन्म भर ढोया पर वह आज काम आगया" ॥

(४६४) टीका । कवित्त (८४२–४६४ = ३७८)

गायौ " भक्त इष्ट अति, " सुनिके महंत एक, लैनकों परीछा आयौ, संग संतभीर है । भूख कों जतावै, वानी व्यास को सुनावै, सुनि कही भोग आवै इहां, मानै हरि धीर है ॥ तब न प्रमान करी, संक धरी, लै प्रसाद ग्रास दोय

चार, उठे मानों भई पीर है। पातर समेट लई "सीत करि मोकों दई; पावौ तुम और;" पाव लिये, दृग नीर है॥ ३७२॥ (६२९–३७२ = २५७)

वार्तिक तिलक।

श्रीप्रियादास जी कहते हैं कि श्रीनाभास्वामी ने जो अपने छप्पय (मूल ९२) में यह कहा कि "भक्त इष्ट अति व्यासकें," सो सुनकर एक महन्त जी श्रीव्यासजी की परीक्षा लेने आए, उनके साथ सन्तों की भीड़भाड़ भी थी। श्रीव्यास जी को सुनाकर महन्त ने कहा "मैं भूख से अतीव पीड़ित हूं"। आपने कहा "भोग का थार जा चुका है, तनक धीर धरियै पंगति हुआही चाहती है"। यह सुन महन्त को इनके 'भक्त इष्ट' होने में शंका हुई श्रीनाभा वचन को प्रमाण न माना; पुनः "भूख भूख" बोल उठे। आप तो सन्तों में वस्तुतः श्रीहरि का भाव रखते थे ही, आपने चटपट कहा कि "हां भोग आता है"; यह कह आपने भोग मँगा ही दिया। महन्तजी ने प्रसाद केवल दो चार ग्रास पाकर, पेट में पीड़ा के ओठर से छोड़ दिया। श्रीव्यासजी ने उसको भागवत प्रसादी मानकर अपने पाने के अर्थ पत्तल समेट के रखलिया; और, बोले कि "आपने बड़ी कृपा की जो मेरे लिये प्रसादी कर दी। पर आपने पूर्ण हो के पाया नहीं, सो और भोग आता है, कृपाकर आप अवश्य पाइये"। आपका यह निःछल दृढ़

भाव सन्तों में देख, महन्तजी के नेत्रों में अश्रु भर आए; पांव पकड़कर कहने लगे कि ", मैं परीक्षा लेने आया था वास्तव में आप भगवद्भक्तों को अति इष्टदेव मानते हैं, श्री नाभास्वामी ने यथार्थ लिखा है" ॥ "साधु कह्यो तब भरो हुलासा । सत्य, व्यास! तुम भक्तन-दासा" ॥

(४६५) टीका । कवित्त (८४२-४६५ = ३७७)

भये सुत तीन, बांट निपट नवीन कियो, एक ओर सेवा, एक ओर धन धर्‍यौ है । तीसरी जू ठौर स्याम बंदनी औ छाप धरी, करी ऐसी रीति, देखि बड़ो सोच पर्‍यौ है ॥ एक ने रुपैया लिये; एकने किशोर जू कों; श्री "किशोरदास" भाल तिलक लै कर्‍यौ है । छापे दिये स्वामी हरिदास; निसि रास कीनो, वही रास ललितादि गायौ मन हर्‍यौ है ॥ ३७३ ॥ (६२९-३७३ = २५६)

वार्तिक तिलक ।

श्रीव्यास जी के तीन लड़के थे उन के लिये आपने पूंजी की बांट बड़ी विलक्षण (नए ढंग की) की; और तीनों से कहा कि "जिस्के जो जी चाहे इन तीनों में से सो सोही लेलेवे" । एक (रासदास) ने धन रुपए लिये; दूसरे (विलासदास) ने सेवा (श्रीकिशोर ठाकुरजी को); और तीसरे ने जिसका नाम श्रीकिशोरदास था स्याम-बंदनी और छाप तिलक माथे चढ़ालिया । स्वामी हरिदास जी से छाप धारण कराकर श्रीकिशोरदास जी हरिकृपा से भजन में मग्न हुए ।

एक दिन श्रीकिशोरदास जी स्वामी श्रीहरिदास जी तथा श्रीव्यासदेव जी के साथ यमुना जी के तट गए और वहां अपना बनाया एक भजन रहस्य का गा सुनाया। उसी रात को श्रीव्यास जी ने दिव्य रहस्य में उसी पद को श्रीललिताजी को गाते सुना। श्रीव्यासजी की और श्रीकिशोरदास जी की जय! जय!! जय!!!

(३६६) मूल। छप्पय (८४२-४६६ = ३७६)

(श्री) "रूप" "सनातन" भक्ति जल, (श्री) "जीव गुसाईं" सर गँभीर॥ बेला भजन सुपक्क, कषाय न कबहूं लागी। बृन्दावन दृढ़वास जुगल चरननि अनुरागी॥ पोथी लेखन पान अघट अक्षर चित दीनौ। सदग्रंथनि कौ सार सबै हस्तामल कीनौ॥ संदेह ग्रंथि छेदन समर्थ, रस रास उपासक परम धीर। (श्री) "रूप" "सनातन" भक्ति जल, (श्री) "जीवगुसाईं" सर गंभीर॥ ९३॥ (२१३-९३ = १२०)

वार्तिक तिलक।

श्रीजीव गुशाईं।

श्रीरूप जी और श्रीसनातन जी की भक्ति रूपी जल के, उनके भतीजे तथा शिष्य श्रीजीव गुशाईं श्रीहरि-कृपा से गम्भीर सरोवर के सरिस हुए; अर्थात् उन दोनों की

भक्ति रूपी जल इनके हृदय सर में भर गया। उस सर के बेला (मर्जादा, घाट) सम श्रीभगवद्भजन की परिपक्वता (सिद्धता) को जानिये। श्रीजीव गुशाईं की भक्ति रूपी जल में कषाय (काई) कदापि नहीं लगी।

आप पुस्तक लिखने में अति प्रवीण दत्तचित्त चमत्कार युक्त थे अर्थात् अति ललिताक्षर अति शीघ्र अति शुद्ध अति स्पष्ट तथा एक पृष्ठ लिखके सूखने को रख दूसरे पत्रा के पृष्ठ को लिखकर फिर पूर्व पत्रा के पृष्ठको लिखते थे परन्तु एक अक्षर घटबढ़ नहीं होता था। वेद पुराण शास्त्र स्मृति संहिताओं के भाव समझने में सिद्धान्त प्रमाण जानने में आपने पूरा चित्त लगाया।

सब ऐश्वर्य और संपत्ति तृणसम परित्याग करके श्री वृन्दावन में आके दृढ़ निवास किया। श्रीयुगलसर्कार के चरणों के बड़े भारी अनुरागी हुए। सब सद्ग्रन्थों के सार को आपने ऐसा अभ्यास और मनस्थ किया था कि जैसे मनुष्य अपनी हथेली पर के आंवले को सम्पूर्ण प्रकार से रेखा रेखा भली भांति देखता है। सन्देह रूपी गिरहों को खोलने में आप परम समर्थ, महा वैराग्यवान्, शान्त, बड़े धीर, तथा रसज्ञ; और परम रहस्योपासक थे।

आप एक दिन बहुमूल्य पाटाम्बर पहने थे, देखकर श्री रूपसनातन जी ने कहा "विरक्त कहलाकर यह वस्त्र ?" आपने उसी घड़ी किसी को देडाला, और, ग्राम के बाहर

श्रीयमुना जी के तीर कुटी बनाकर भजन में मग्न रहने लगे। आपकी वृत्ति तथा प्रेम देखकर, श्री रूप और सनातन जी ने विशेष शिक्षा दी और अत्यन्त कृपा की। गुप्त रखने की आज्ञा दी पर आपने सब के हित के लिये प्रगट कर दिये॥

(४६७) टीका। कवित्त (८४२–४६७ = ३७५)

किये नाना ग्रंथ, हृदै ग्रंथि दृढ़ छेद डारैं, डारैं धन यमुना में, आवै चहूं ओर तें। कही दास "साधु सेवा कीजै", कहैं "पात्रता न", "करौं नीके" करी; बोल्यौ कटु कोप जोर तें॥ तब समझायौ, संत गौरव बढ़ायौ, यह सब कौं सिखायौ, बोलैं मीठौ निसि भोर तें। चरित अपार, भाव भक्ति कौ न पारावार, कियो ऊ बैराग सार कहै कौन छोरतें॥ ३७४॥ (६२९–३७४ = २५५)

वार्त्तिक तिलक।

आपने अनेक ग्रन्थ बनाए जो हृदय की दृढ़ ग्रन्थियों को भलीभांति काट देते हैं। आपके पास चारों ओर से लोग धन भेजते थे और भेट देते थे, आप आदर से लेकर श्रीयमुनाजी में फेंक दिया करते थे। शिष्य सेवकों ने धन को साधुसेवा में लगाने की बारम्बार प्रार्थना की। उत्तर दिया कि "साधुसेवा करने योग्य पात्र तुमलोगों में से कोई नहीं दीखता"। एक दास ने कहा मैं भलीभांति करूंगा"। वह आज्ञा लेकर सन्तों की सेवा करने लगा। कुछ काल के अनन्तर एक दिन एक सन्त ने कुसमय में

कुछ भोजन मांगा, इसने क्रोध करके कटुवचन कहे । तब सुनकर आपने बहुत समझाया सन्तों की महिमा बता कर कहा कि "इसी लिये न मैं कहता था कि साधुसेवा अति कठिन है"। सदैव मिष्ट बोलने की सबको शिक्षा दी। स्त्री का मुख नहीं देखते थे। (दो०) "मीराजी ब्रज में गईं, ते निज भक्ति लखाय। सो पन दियो छुड़ाय, सो * मीरा कथा सुहाय" ॥ आपके चरित अपार हैं। आप की भक्तिभाव का पार कौन पा सकता है। वैराग धारण करने पर भी आपकी गूढ़ वृत्ति भावभक्ति को पहुँचना सहज नहीं। एक परीक्षित कृपापात्र को कुटी सौंपके आप वृन्दावन के कुंजों में प्रेममत्त परम अकिंचन फिरने लगे। श्रीवृन्दाबन से कहीं अन्यत्र रात्रि को न बसने तथा बड़ी भारी पाण्डित्य की प्रशंसा सुनकर बादशाह (अकबर) ने थोड़ी घड़ी के लिये सतसंग के निमित्त, घोड़ों के रथ पर आगरे में बुलाकर फिर रथ पर डाकही द्वारा उसी दिन श्रीवृन्दाबन पहुंचा भी दिया। बादशाह के बड़े आग्रह पर यह आज्ञा की कि श्रीवृन्दाबन में एक बड़ा भारी पुस्तकालय कर दो कि जिसमें सब वेद, पुराण, उपपुराण, स्मृतियां, शास्त्र, संहिता, आदि सब प्रकार की संस्कृत पोथियां संगृहीत हों। बादशाह ने वैसाही किया ॥

*श्रीमीरा जी ने पूछा "श्रीकृष्णचन्द्र के अतिरिक्त यहां पुरुष और कौन ?"

(४६८) मूल । छप्पय । (८४२-४६८ = ३७४)

वृन्दावन की माधुरी, इन मिलि आस्वादन
कियो ॥ सर्वस राधारवन भट्ट गोपाल उजागर ।
रिषीकेश भगवान विपुलवीठल रससागर ॥
थानेश्वरी जगन्नाथ लोकनाथ महामुनि मधु श्री
रँग । कृष्णदास पंडित उभै अधिकारी हरि अँग ॥
घमंडी युगलकिशोर भृत्य भूगर्भ जीव दृढ़व्रत
लियो । वृन्दावन की माधुरी इन मिलि आस्वा-
दन कियो ॥ ९४ ॥ (२१३-९४ = ११९)

वार्तिक तिलक ।

श्रीवृन्दावन की माधुरी का आस्वादन श्रीकृपासे इन महानुभावों को प्राप्त हुआः—

१ श्रीगोपालभट्ट जी । उजागर, जिनके सर्वस्व श्रीराधा-रमण जी ही ।

२ श्रीअलिभगवान् जी । ३ श्रीविठ्ठलविपुल जी, रससागर।

४ श्रीजगन्नाथथानेश्वरी जी । ५ श्रीलोकनाथ जी ।

६ श्रीमधु गुशाईं जी, महामुनि ।

७ श्री—श्रीरङ्ग जी ।

८ श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारी जी, अधिकारी ।

९ श्रीकृष्णदास पंडित जी, हरि के अंग (मित्र)

१० श्रीभूगर्भ जी । दृढ़व्रत वाले । ११ श्री घमंडी जी ।

१२ युगलकिशोर भृत्य । १३ श्री जीव गोसांई जी । १४ हृषीकेश ।

(४६९) टीका । कवित्त (८४२–४६९ = ३७३)

गुसाईं श्रीगोपालभट्ट जी

श्रीगोपालभट्टजू के हिये वे रसाल बसे, लसे यों प्रगट राधारवन सरूप है । नाना भोग राग करें, अति अनुराग पगे, जगे जग माहिं, हित कौतुक अनूप है ॥ वृन्दावन माधुरी अगाध कौ सवाद लियौ, जियौ जिन पायौ सीत, भये रस रूप हैं । गुनही कौ लेत, जीव औगुण को त्यागि देत, करुना निकेत, धर्मसेत, भक्त भूप हैं ॥३७५॥ (६२९–३७५ = २५४)

वार्तिक तिलक ।

गुसाईं श्रीगोपालभट्ट जी शृङ्गार माधुर्य्य और धाम निष्ठा में निपुण, गौड़ ब्राह्मण, महात्मा श्री व्यंकटभट्ट जी के बेटे, महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य जी के शिष्य, श्रीवृन्दावन की अगाध माधुरी का स्वाद लिया; आपके हृदय में वे रसाल नाम श्रीराधारमण जी प्रगट स्वरूप से बसते थे। नाना प्रकार के भोगराग बड़े अनुराग से अर्पण किया करते थे; संसार में बड़े प्रसिद्ध हुए; आप के सर्वहितू होने के अनेक कौतुक हैं; जिसने आपकी सीत प्रसादी पाई वह जीवनमुक्त, रस का रूपही होगया; किसी जीवका अवगुण अपने मन में कभी न लाते थे, सब प्राणियों के गुणोंही को हृदय में सदा रखते थे ।

सब सम्पति ऐश्वर्य्य को परित्याग कर श्रीवृन्दावन में आ बसे थे। धर्मसेत, करुणानिकेत और भक्तभूप हुए।

एक बेर प्रभु अति कृपा कर के (बैसाख की पूर्णमासी को) आपके सेवावाले सालग्राम जी में से परम सुन्दर मूर्त्ति प्रगट हुए, जो श्रीराधारमणजी अभी तक मन्दिर में विराजमान हैं। भक्तरुचि रखनेवाले भावग्राहक श्रीप्रभु की जय।

(४७०) टीका। कवित्त (८४२–४७० = ३७२)

श्रीअलि भगवान।

अलिभगवान, राम सेवा सावधान मन, वृन्दावन आये कछु और रीति भई है। देखे रासमंडल में विहरत रस रास, बाढ़ी छविप्यास दृग, सुधि बुधि गई है॥ नाम धरि रास औ विहारी, सेवा प्यारी लागी, खगी हियमांझ, गुरु सुनी बात नई है। विपिनि पधारे, आप जाय पग धारे सीस, "ईश मेरे तुम," सुख पायौ, कहि दई है॥ ३७६॥ (६२९–३७६ = २५३)

वार्त्तिक तिलक।

श्री अलिभगवान् ने गुरु से श्रीराममन्त्र पाया। श्री वृन्दावन में रास के बड़ेही प्रेमी हुए। दर्शन के बड़े प्यासे थे। श्रीठाकुर जी को "रासविहारी" जी कहते, और अच्छे प्रकार से सेवा करते थे। कृपा करके गुरु जी ने श्री वृन्दावन में जाकर दर्शन दिये। गुरु आगमन सुन, आपने श्रीचरण पर अपना सीस रखकर विनय किया कि

"यद्यपि आप (गुरु) ईश से बड़े हैं, तथापि मेरा सम्पूर्ण मन तो रासबिहारी जी में बहुत आनन्द मानता है"। सुनकर श्रीगुरु भगवान् आलि भगवान् से प्रसन्न हुए और कहा कि "रासबिहारी जी भी तो श्रीराम ही जी के अवतार हैं, रासबिहारी जी ही में पगे रहो"॥

(४७१) टीका। कवित्त (८४२-४७१ = ३७१)

श्री विठ्ठल विपुलजी।

स्वामी हरिदासजू के दास, नाम वीठल हैं, गुरु के वियोग दाह उपज्यौ अपार है। रास के समाज में विराज सब भक्तराज, बोलि कै पठाये, आये आज्ञा बड़ो भार है॥ युगल सरूप अवलोकि, नाना नृत्य भेद, गान तान कान सुनि, रही न संभार है। मिलि गये वाही ठौर, पायौ भाव तन और, कहै रस सागर सो ताकौं यों बिचार है॥ ३७७॥ (६२९-३७७ = २५२)

वार्त्तिक तिलक।

लीला तथा गुरु निष्ठ श्रीविपुल बिट्ठल जी, स्वामी श्रीहरिदास जी के शिष्य थे। श्रीगुरु के परमधाम जाने पर गुरु वियोग ने आपको बड़ा शोकाकुल करदिया; कहीं जातेआते न थे। एक रात वहां (श्रीवृन्दावन में) रास के समाज में महानुभावों ने आपको बुला भेजा; आज्ञानुसार आप गए। श्रीयुगलसर्कार के दर्शन कर, तथा गानबाजा की अपार

माधुरी सुन, आप बेसुध होगए। उसी में श्रीगुरु हरिदास जी की और श्रीयुगलसर्कार की दिव्य झांकी पाके श्री विट्ठल विपुल जी रस सागर में मग्न हो, पंचभौतिक तन तज के दिव्य शरीर पा, परधाम को पहुंच गए; प्रेम इसका नाम है। प्रेमाभक्ति की जय॥

(४७२) टीका। कवित्त (८४२-४७२=३७०)

श्री जगन्नाथ थानेस्वरी जी।

महाप्रभु पारषद थानेस्वरी जगन्नाथ, नाथ कों प्रकाश घर दिना तीन देख्यो है। भए सिष्य, जान आप नाम कृष्णदास धर्‍यौ, कृष्णजू कहत सबै आदर विसेख्यो है॥ सेवा 'मनमोहनजू' कूपमें जनाइ दई, बाहर निकास, करी लाड़, उर लेख्यो है। सुत रघुनाथ जू कों, स्वप्न में श्लोक दान, दयाकै निदान; पुत्र दियौ, प्रेम पेष्यो है॥ ३७८॥ (६२९-३७८=२५१)

वार्त्तिक तिलक।

"महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य जी" के पार्षद "थानेश्वरी श्री जगन्नाथ जी" प्रथम अपने गृह में थे; पूर्वजन्म संस्कार भाग्योदय अर्थात् श्रीहरि कृपा से गृह ही में प्राणनाथ भगवान् का प्रकाशमान् रूप तीन दिवस देखा, अति ज्ञानानन्द को प्राप्त हुए (चौ०) "मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज स्वरूपा"। तब आके महाप्रभुजी के शिष्य हुए। आपने इनका "कृष्णदास" नाम

रक्खा, सब लोग अति आदर से "कृष्णजी" ही कहते थे।

स्वप्न में "श्रीमनमोहन जी" ने कहा कि "हम अमुक कूप में हैं निकालकर पधराओ और सेवा करो"। बड़े प्रेम से वैसाही किया।

आपके पुत्र (रघुनाथ दास) विद्याहीन अपढ़ थे। एक समय आप इस चिन्ता में थे, स्वप्न में कृपानिधि सर्कार ने आपको एक श्लोक बताकर आज्ञा की कि "यही श्लोक पुत्र को पढ़ा दो"। आप ने वह श्लोक पुत्र को दिया; सुत रघुनाथदास बड़े विद्वान हरिप्रेमी हुए। कृपा की जय॥

---

(४७३) टीका। कबित्त (८४२–४७३ = ३६९)

श्रीलोकनाथ गुसाँई जी।

महाप्रभु कृष्ण चैतन्यजू के पारषद, लोकनाथ नाम, अभिराम सब रीति है। राधाकृष्ण लीलासौं रँगीन नवीन मैं मन, जल मीन जैसे तैसें निसि दिन प्रीति है॥ "भागवत" गान रसखान, सो तौ प्राण तुल्य, अति सुख मान, कहैं गावै जोई मीत है। रसिक प्रवीन मग चलत चरण लागि, कृपा कै जनाय दई, जैसी नेह नीत है॥३७९॥ (६२९–३७९ = २५०)

वार्त्तिक तिलक।

महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य जी के आप शिष्य थे, "लोकनाथ" नाम था। आपकी सब रीति अति अभिराम थी। श्रीराधाकृष्ण जी की नवीन लीला में आप का मन भली भाँति रँगा था;

जैसे जल की प्रीति मीन को वैसेही आप को भी रूप नाम लीला धाम से प्रेम था। शृङ्गारमाधुर्य्य निष्ठा में बड़े दृढ़ थे। श्रीवृन्दावन धाम से अतिशय प्रीति थी। श्रीमद्भागवत का गान कीर्त्तन सदा आपके प्राण सरिस था और श्रीमद्भागवत पाठ गान करनेवालों से बड़ा प्रेम रखते थे, यह कहते थे कि "भागवत पढ़नेवाले हमारे मित्र हैं"। एक दिन रसिक प्रवीण जी मार्ग चलते एक को श्रीभागवत गाते सुन उसके पावों पर गिर पड़े; और कृपा करके यह भेद उसको जना दिया जिससे औरों को भी श्रीभागवत ग्रन्थ और इन भागवत के माहात्म्य प्रसिद्ध हुए।

एक दिन इनके ठाकुर के भूषण चोरों ने चुरा लिये। थोड़ा आगे जाके सब अन्धे हो कर लौट आए। रसिक जी के चरणों पर पड़े, आपने कृपाकर उन सब को सनाथ किया।

---

(४७४) टीका। कवित्त (८४२-४७४ = ३६८)

श्री मधुगुसांई जी।

श्री मधु गोसांई आये वृन्दावन; चाह बढ़ी, देखें इन नैननि सों कैसोधौ सरूप है।·ढूंढ़त फिरत वन वन कुंज लता द्रुम, मिटी भूख प्यास, नहीं जानै छाँह धूप है॥ जमुना चढ़त, काट करत, करारे जहां, वंसीवट तट डीठ परे वै अनूप है। अंक भरि लियें, दौर अजहूंलौ सिर मोर चाहै भाग भाल साथ गोपीनाथ रूप है॥ ३८०॥ (६२९ −३८० = २४९)

वार्त्तिक तिलक।

श्री मधुगुसाईं जी धामनिष्ठा में दृढ़, "श्रीमधु" नाम श्री वृन्दावन में बंगाले से आए, तब यह चाह आपके मन में बढ़ी कि "मैं अपने नेत्रों से श्रीकृष्णचन्द्र को देखूं कि वह रूप कैसा है।" इस प्रेम की उत्कंठा में भरे हुए, भूख, प्यास, छाया, धूप, नींद, सब कुछ छोड़, बन बन, प्रति कुंज और लता बृच्छ के बीच में ढूंढते फिरते थे। (चौ०) "प्रियतम पद पंकज जब देखौं। तब निज जन्म सफल करि लेखौं"॥

बंशीबट के निकट में जहां श्रीयमुना जी बढ़ी हुई, करारे काटि रही थीं, वहां आपने कृपाकर अनूप रूप से दर्शन दिये। मधु गुसाईं जी दौड़ भक्तवत्सल जी को अंक में भर कर, अनिर्वाच्य परमानन्द को प्राप्त हुए। (चौ०) "ऐसो सुख बरनिय केहि भांती। जनु चातकी पाइ जल स्वाती॥ १॥ हरि दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज स्वरूपा॥ २॥" प्रेम हो तो ऐसा; दर्शन की प्यास हो तो ऐसी॥

तदनंतर उस साक्षात रूप से भगवान् आर्चा मूर्ति "गोपीनाथ" रूप हो, वहां विराजे; अब तक जिसके बड़े भाग हों, वह रसिक सिरमौर के दर्शन करता है। प्रेम की जय, जय, जय॥

(४७९) टीका । कवित्त (८४२-४७९ = ३६७)

श्री कृष्णदास ब्रह्मचारी जी ।

गुसांई श्री सनातन जू "मदमोहन" रूप माथें पधराये कही "सेवा नीके कीजियै"। जानौं "कृष्णदास" ब्रह्मचारी अधिकारी भये, भट्ट श्री नारायण जू सिख्य किये रीझियै ॥ करि कै सिंगार चारु, आप ही निहारि रहै, गहै नहीं चेत भाव मांझ मति भीजियै । कहां लौ बखान करौं राग भोग रीति भांति, अबलों विराजमान देखि देखि जीजियै ॥३८१॥ (६२९ - ३८१ = २४८)

वार्त्तिक तिलक ।

प्रेमी श्री कृष्णदास ब्रह्मचारी जी गुसाईं श्री सनातन जी के शिष्य थे, सो इनको योग्य, प्रेमी, तथा सुपात्र जानके आप (श्रीसनातनजी) ने प्रभु "श्री मदनमोहन" विग्रह जी के कैंकर्य का भार कृष्णदास जी के सीसपर धर, आपने कहा कि "प्रभु की सेवा भले प्रकार करो"। श्री गुरु आज्ञा माथे रख यथार्थ सेवा करने लगे, क्योंकि सेवा के अधिकारी ही थे। कुछ कालांतर में श्री नारायण भट्ट जी आप के (श्री कृष्णदास ब्रह्मचारी जी के) शिष्य हुए; उनको सेवा सौंपी; उन की प्रेमाभक्ति प्रभु के रीझने योग्य थी, आप की सानुराग सेवा क्या कही जाय, अति सुन्दर श्रृंगार करके श्री छबि को इकटक देखते निहारते प्रेम समाधी लग जाती थी, तन मन की सब सुधि भूलि मति चित्त भावानुराग में भीग जाते

थे; और राग भोग की रीति भांति कहां तक बखान की जाय। आप के प्रेम के लड़ाये हुए श्री मदनमोहन जी अब तक विराजमान हैं, कि जिनके दर्शन से जीवों का जीवन सुफल होता है॥

(४७८) टीका। कवित्त (८४२–४७६ = ३६६)

श्री कृष्णदास पंडित जू।

श्री गोविन्द चन्द रूप राशि रस रासि दास, कृष्णदास पंडित ये दूसरे यों जानि लै। सेवा अनुराग अंग अंग माति पागि रही, पागि रही मति जौपै तौ पै यह मानि लै॥ प्रीति हरि-दासन सों विविधि प्रसाद देत, हिये लाय लेत, देखि पद्धति प्रमानि लै। सहज की रीति में प्रतीति सो विनीत करैं, ढरैं वाही ओर मन अनभव आनिलै॥ ३८२॥ (६२९ ३८२ = २४७)

वार्त्तिक तिलक।

रूप के राशि श्री गोबिन्दचन्दजी के रस रासि दास "प्रेमी श्री कृष्णदास जी पंडित" जान लेना चाहिये। प्रभु की सेवा अनुराग के जितने अंग हैं उन सबों में इनकी मति पग रही थी। हे श्रोता जनो! जो आपकी भी मति प्रेमसे पगी हो, तो यह वार्त्ता हितकरके मान लिजिये।

श्री कृष्णदास जी की हरि दासों वैष्णवों से अति प्रीति थी; सन्तों को श्री गोविन्द जी का बिविधि प्रकार का प्रसाद देते; हृदय में लगा लेते थे; इस प्रेम सम्प्रदाय को

भी बुद्धि के नेत्रों से देख कर प्रमाण करना चाहिये। प्रेमी पंडित जी श्रीहरि और हरिभक्तों से सहज रीति ही से अति बिनीत हो, प्रीति प्रतीति रख, उसी ओर ढरते थे।

इस प्रेम भक्ति का अनुभव अपने मन में करना चाहिये।

श्री रामदास जी और श्री कृष्णदास जी भक्त कई हुए हैं।

(४७७) टीका। कवित्त (८४२-४७७ = ३६५)

श्रीभूगर्भ गोसाईं जू

गुसाईं "भूगर्भ" वृन्दावन दृढ़वास कियौ, लियौ सुख बैठि कुंज "गोविंद" अनूप है। बड़ेई विरक्त अनुरक्त रूप माधुरी मैं, ताही कौ सवाद लेत मिले भक्त भूप हैं॥ मानसी विचार ही अहार, सो निहार रहैं, गहैं मन वृत्ति, वेई, युगल सरूप हैं। बुद्धि के प्रमान उन मान मैं बखान कर्यौ भर्यौ बहु रंग जाहि जानै रस रूप हैं॥ ३८३॥

(६२९-३८३ = २४६)

वार्त्तिक तिलक।

गुसाईं श्री "भूगर्भजी" ने धामनिष्ठादृढ़ता पूर्वक वृन्दाबन बास किया और अति अनूप श्री "गोबिन्द" कुंज (मन्दिर) में बिराजमान होकर श्रीगोविन्ददेव भगवान के प्रेमके सुख लिये; आप संसार से अति विरक्त, और प्रभुरूप माधुरी के अति ही अनुरक्त थे; भक्तभूपों के साथ में मिले हुए उसी माधुरी का स्वाद लेतेथे। मानसी सेवा ही का चिन्तवन आपका आहार था; मन की वृत्तिरूप दृष्टि से गौर श्याम

युगल स्वरूप ही को निहारते रहते थे ।

आपकी अगम्य दशा को मैंने अपनी बुद्धि के प्रमाण ही भर अनुमान करके बखान किया है; आप के हृदय में अथाह प्रेम रंग भरा था; उसको रस रूप संत ही जानतेथे ॥

(४७८) मूल । छप्पय । (८४२–४७८ = ३६४)

(श्री)" रसिक मुरारि " उदार अति, मत्त गजहिं उपदेश दियौ ॥ तन, मन, धन, परिवार, सहित, सेवत सन्तन कहँ । दिव्य भोग, आरती, अधिक हरिहूँ ते, हियमहँ ॥ श्री वृन्दावनचन्द श्याम श्यामारँग भीने ॥ मगन प्रेम पीयूष पयध परचै बहु दीने ॥ श्रीहरि प्रिय श्यामानन्दवर भजन भूमि उद्धार कियौ । (श्री)" रसिकमुरारि" उदार अति, मत्त गजहिं उपदेश दियौ ॥ ८५ ॥ (२१३—८५ = ११८)

वार्त्तिक तिलक ।

श्री रसिक मुरारि जी ।

श्री रसिक मुरारि जी अतिशय उदार हुए । आप ने मतवाले हाथी को ज्ञानभक्ति उपदेश देकर अपना शिष्य कर लिया, और उदार ऐसे हुए कि परिवार सहित तन मन धन जन से सन्तों की सेवा करते थे; कहांतक कहा जाय हरिभक्तोंमें श्रीहरि से भी अधिक भाव हृदयमें मान,

दिव्य भोग अर्पण कर, आरती किया करते थे। 'श्रीवृन्दाबन युगलचन्द श्यामा श्याम' के रंग में भीगे, प्रेम पियूष पयोधि में मग्न रहते थे। "होंठ पर नाम वही, चित्त वहीं, देह कहीं ॥ हाथ में कंज चरण, जाप वही, आप वहीं।" ॥१॥ और बहुत से परिचे भी दिये। अपने गुरुदेव श्री हरिप्रिय "श्यामानन्द" जी की श्रेष्ठ भजनरूपी भूमिका उद्धार किया। श्री रसिक मुरारि जी ऐसे उदार हुए कि दुष्ट राजा की छीनी हुई भूमि को उद्धार किया, हरि सेवा में लौटा लिया ॥ अपना तन मन धन सब कुछ सन्तों ही का समझते थे ॥

(४७९) टीका। कवित्त (८४२-४७९ = ३६३)

रसिक मुरारि साधु-सेवा विस्तार किया, पावै कौन पार, रीति भांति कछु न्यारियै। संत चरणामृत के माट गृह भरे रहैं, ताहीको प्रनाम पूजा करि उर धारियै ॥ आवैं हरिदास, तिन्हैं देत सुख राशि जीभ एक, न, प्रकाशिसकै, थकै सो विचारियै ॥ करैं गुरु उत्सव, लै दिन मान सबै कोऊ, द्वादस दिवस जन घटा लागी प्यारियै॥३८४॥(६२९-३८४ = २४५)

श्रीरसिक मुरारि जी ने संत-सेवाका बड़ाही बिस्तार किया। आपकी अलौकिक रीति भांति का वर्णन कर कौन पार पा सकता है। गृह में संतो के चरणामृत के माट (पात्र) भरे हुए वेदिकाओं पर रक्खे रहते, उन्हीं की पूजा, और उन्हीं को प्रणाम, हृदय में भाव धारण कर के, किया

करते थे । आपके स्थान में अनेक भगवतदास आते थे, उन को सत्कार कर, अति भारी सुख दिया करते थे। आपकी अनूठी प्रीति रीति एक भी एक जीभ से प्रकाश नहीं हो सकती; विचार कर मन थक जाता है।

जिस दिन गुरु उत्सव करते थे, उस दिन समस्त जीव मात्र को भोजनादिक से सत्कार करते थे, और संत जनों की घटा (समूह) बारह दिवस (दिनों) तक छांई रहती थी ॥

(४८०) टीका । कवित्त (८४२-१८० = ६६२)

संत चरणामृतकों ल्यावो जाय नीकी भांति, जी की भांति जानिवे को दास लै पठायौ है। आनिकै बखान कियौ लियौ सब साधुन कौ, पान करि बोले " सो सवाद नहीं आयौ है " ॥ जिते सभाजन, कही चाखौ देहु मन कोऊ महिमा न जानै कन, जानी छोड़ि आयौ है । पूछी, कही कोढ़ी एक रह्यौ, " आनो, ल्यायो, पीयो, दियो सुख पाय, नैन नीर ढरकायौ है ॥ ३८५ ॥ (६२९-३८५ = २४४)

वार्त्तिक तिलक ।

एक दिवस, भंडारे में बहुत संत प्रसाद पा रहे थे; आपने एक शिष्य सेवक के जी की (हृदय की) गति जानने के लिये आज्ञा दी की "अच्छे प्रकार से सब संतों का चरणामृत उतार लाओ " । चरणामृत लाकर उसने कहा कि "मैं सब संतों का चरणामृत ले आया हूं"। आप पान कर बोले कि " क्या कारण है कि जैसा स्वाद नित्य आता